शिव गीता सार

स्वामी निरंजन

शिव गीता सार

स्वामी निरंजन

प्रकाशक : **निरंजन बुक् ट्रष्ट**
प्रथम मुद्रण : होली, २००९
मुद्रण एवं अलंकरण : **दिव्य मुद्रणी,** भुवनेश्वर – २ (उड़िसा)
प्रच्छद : बिभु

मूल्य : रु 30/-

विषय अनुक्रम

भूमिका

संसार का प्रत्येक प्राणी दुःखों की आत्यान्तिक निवृत्ति एवं अखण्ड आनन्द की प्राप्ति चाहता है । जीवों की योनियाँ भिन्न-भिन्न है, कर्म भिन्न-भिन्न है, आहार भिन्न-भिन्न है, प्रकृत्ति भिन्न-भिन्न है किन्तु सभी प्राणियों का लक्ष अभिन्न है । इस लक्ष्य का नाम ही मुक्ति कहा जाता है । मानव जीवन में धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों पुरुषार्थों की सिद्धि होती है । इनमें से मुक्ति को परम पुरुषार्थ कहा है ।

संसार के पदार्थों का जहाँ संयोग है, वहाँ उसका वियोग भी निश्चित ही होता है । जहाँ जन्म है वहाँ मृत्यु भी है । संसार में रहते मृत्यु पर्यन्त सुख-दुःख द्वन्द सभी में रहते हैं, किन्तु नित्य वस्तु परमात्मा से हमारा कभी वियोग नहीं होता ।

अतः अनित्य वस्तु से ममता छोड़ नित्य वस्तु परमात्मा में मन लगाना ही ज्ञान है । जिस सुख के लाभ का तो कभी अन्त नहीं है तथा हानि की कोई सम्भावना ही नहीं है तथा जिसमें दुःख का लेश भी नहीं है । जैसे साधक का समाधि से व्युत्थान हो जाता है, इस प्रकार ज्ञानी का अविनाशी निजात्म स्वरूप के नित्यानन्द से कभी व्युत्थान अर्थात् वियोग नहीं होता है ।

परमात्मा की प्राप्ति रूप जिस लाभ को प्राप्त होकर उससे अधिक दूसरा कुछ भी लाभ नहीं है और जो दुःख रूप संसार से रहित है, उस परमात्मा को ही प्रत्येक मनुष्य को जानना चाहिये ।

इस परम पुरुषार्थ को पाने के लिये जीव को मल, विक्षेप, आवरण इन तीनों दोषों से मुक्ति लेना परमावश्यक है । इन त्रिदोषों की निवृत्ति हेतु वेद में कर्म, उपासना तथा ज्ञान इन तीनों साधनों का वर्णन किया गया है ।

जीव प्रथम अपने मन के मल दोष के कारण अशुद्ध आहार, अभक्ष भक्षण, चोरी, हत्या, पशु बली, मदिरा पान, भ्रूण हत्या, ईर्षा, निन्दा आदि निषिद्ध कर्म करता है । इस मल दोष को दूर करने हेतु वेद में ८०,००० कर्म काण्ड के मंत्रों की व्यवस्था है । जब निष्काम कर्म द्वारा इस जीव का मल दोष दूर होता है तब यह भक्ति का अधिकारी बनता है ।

''निर्मल मन जन सो मोहि पावा'

जीवके मन का द्वितीय दोष विक्षेप है । चित्त की चंचलता रूप इस विक्षेप दोष को दूर करने के लिये वेद में १६,००० मंत्रों की व्यवस्था है । जब जीव भगवान के किसी साकार या निराकार रूप की उपासना करता है, संतों की सेवा करता है, सत्संग करता है तब इसका चित्त शांत व एकाग्र होने से इसे ब्रह्म जिज्ञासा उदय होती है । तब यह ज्ञानाधिकारी होता है ।

जीव के मन में तृतीय दोष आवरण को दूर करने के लिये वेद में ४,००० मंत्रों की व्यवस्था है । जव जीव अपने अज्ञान आवरण रूप दोष की निवृत्ति हेतु किसी श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाता है, तब वे तत्त्वदर्शी महापुरुष इस मुमुक्षु को वेदान्त तत्त्व का श्रवण, मनन, निदिध्यासन साधन द्वारा भेद भ्रान्ति, कर्ता-भोक्ता भ्रान्ति, संग भ्रान्ति, विकार भ्रांति तथा ब्रह्म से पृथक जगत सत्यता की भ्रान्ति से मुक्ति दिला कर उस जीव को उसके वास्तविक असंग, साक्षी, आत्म स्वरूप की अनुभूति करा देते हैं ।

देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि यह सब प्रकृति का कार्य होने से अनात्म पदार्थ है, अतः इनके प्रति मैं-मेरा भाव करना यह मुख्य भ्रान्ति है । इसलिये जिज्ञासु को श्रोत्रिय-ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाकर इस अनात्म संघात् से आत्मभाव को दूर कर आत्मा में ही आत्म भाव को दृढ़ करना चाहिये ।

मुमुक्षु को ही अन्तःकरण की मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार रूप वृत्तियों का त्यागकर इस देह संघात् का साक्षी प्रत्यगात्मा 'मैं ही ब्रह्म हूँ' ऐसी दृढ़ निष्ठा करना चाहिये । तथा इस द्रष्टा, साक्षी, आत्म निष्ठा के अतिरिक्त सभी अनात्म चिन्तन का त्याग कर देना चाहिये ।

इन त्रिदोष के अन्तर्गत त्रिवासना भी जीव के बन्धन का कारण है अतः देह वासना, शास्त्र वासना तथा लोकवासना का भी परित्याग करना चाहिये । जब तीनों वासना का त्याग हो जाता है तब बिना विस्मरण के निरन्तर आत्म चिन्तन मन ही मन करता रहे। महाकाश में घटाकाश की तरह एकता का बोध करने की तरह परमात्मा में आत्मा को एक रूप जानकर अखण्ड भाव में सदा शान्त रहे । दर्पण में नगर दिखने की तरह यह जगत् मुझ आत्म अधिष्ठान में दिखाई पड़ता है । जिसमें जगत दिखाई पड़ता है ''वही ब्रह्म मैं हूँ'' ।

अपने आत्मा में ही सूर्य, चन्द्र, नदी, पर्वत, जंगल, पशु-पक्षी, मनुष्यादि सम्पूर्ण जगत् का आभास केवल आरोपित है, उसको दूर करने से स्वयं ही पूर्ण अद्वैत और क्रिया शून्य परब्रह्म रह जाता है ।

जिसको जीवित अवस्था में ही ब्रह्मनिष्ठा प्राप्त हो गई है, वह देह सहित होने पर अभी जीवन्मुक्त तथा देह रहित होने पर विदेह मुक्त ब्रह्मरूप ही हो जाता है । अतः अनात्मा में से आत्मबुद्धि का त्याग कर आत्मा में ही आत्मबुद्धि को दृढ़ करना चाहिये ।

ब्रह्मा से कीट तक की सब उपाधियाँ झूठी ही है । इसलिये एक आत्म स्वरूप में दृढ़ रह अपने आत्मा का ही सर्वत्र दर्शन करें । स्वयं ही ब्रह्मा, विष्णु, शंकर, जगत् और स्वयं ही सब कुछ है । स्वयं से भिन्न कुछ भी नहीं है ।

अतः अखण्ड आनन्द स्वरूप आत्मा को अपना वास्तविक स्वरूप जानकर इस आत्मा में ही बाहर और भीतर आनन्द रस का पान करना चाहिये ।

यह शरीर माता-पिता के रज-वीर्य से उत्पन्न हुआ है और इसमें मल मांस, हाड़ भरा हुआ है । इसलिये इसे चाण्डाल की तरह त्याग कर अपना नित्यानन्द ब्रह्म स्वरूप में स्थित रहना चाहिये ।

इस जीव के मल, विक्षेप इन दो दोषों की निवृत्ति हेतु शास्त्रों में अधिकारी भेदानुसार अनेक प्रकार के साधन बताये हैं किन्तु तृतीय अज्ञान दोष की निवृत्ति हेतु तो एक मात्र ज्ञान ही अन्तिम एवं अनिवार्य साधन है । तत्त्वज्ञान के बिना मुक्ति की प्राप्ति अत्यन्त दुर्लभ है । जैसे कोई आकाश को लपेट बगल में दबा सके तो वही आत्मा को मैं रूप जाने बिना मोक्ष प्राप्त कर सकेगा । किन्तु ऐसा

करना कभी सम्भव नहीं है । अर्थात् आत्मज्ञान बिना मुक्ति कभी भी नहीं हो सकती है ।

यदा चर्मवदाकाशं वेष्टिष्यन्ति मानवा ।
तदा देवंऽविज्ञाय मोक्षिष्यान्ति भविष्यति ।।

न कर्मणामनुष्ठानैर्न दानैस्तपसापि वा ।
कैवल्यं लभते मर्त्यः किन्तु ज्ञानेन केवलम् ।। – शिवगीता २

न कर्मों के अनुष्ठान से, न दान से, न तप से मनुष्य शोक, मोह एवं दुःखों से मुक्त होता है, बल्कि ज्ञान से ही मुक्त होता है ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पंथा विद्यतेऽयनायेति अर्थात् आत्माको जानकर ही कोई जीव मुक्ति को प्राप्त कर सकता है । इसके अतिरिक्त मुक्ति प्राप्त करने का अन्य कोई उपाय नहीं है । अर्थात् यज्ञ, याग, कर्म, पुत्रादिक स्वर्णभूमि तथा धन आदि के द्वारा परमात्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती ।

'**तस्य कार्यं न विद्यते**' अर्थात् स्वरूप ज्ञान की प्राप्ति के इच्छुक मुमुक्षु के लिये या स्वरूप ज्ञान को प्राप्त पुरुष के लिये कर्म, उपासना करना कर्तव्य नहीं है ।

'**कर्म की होंहि स्वरूपहिं चीन्हें**' – रामायण

एक परमेश्वर ही सब जीवों में स्थित एवं सर्वव्यापी है । वही सब भूतों के भीतर में निवास कर रहा है । वह सब के कर्मों का नियामक, पवित्र और निर्गुण है । वह ही सब जीवों का आश्रय भूत है । वह ब्रह्म है, वही सब का साक्षी, चेतन स्वरूप पवित्र और निर्गुण निराकार है । वही सब भूतों में निवास करने वाला ब्रह्म है । जो स्वयं अकेला ही अनन्त कोटि ब्रह्माण्डों के जीवों को वश में रखता है ।

अस्तु ! जो ज्ञानी ब्रह्म का निरन्तर दर्शन करते हैं, उन्हें ही शाश्वत सुख की प्राप्ति होती है, अन्य को नहीं ।

सभी का देह अत्यन्त मलिन है किन्तु देह को धारण करने वाला देही आत्मा स्वयं अत्यन्त शुद्ध है । इस प्रकार देह व आत्मा के अन्तर को जानने वाला ज्ञानी देह को गंगा स्नान प्रसाद तुलसी आदि के सेवन से पवित्र करने की इच्छा

नहीं करता है । तथा आत्मा नित्य शुद्ध, नित्य निर्मल होने से आत्म शुद्धि के लिये भी किसी प्रकार के साधन करने की जरूरत नहीं है ।

जो साधक ज्ञान स्वरूप नित्य मुक्त, नित्य शुद्धात्मा को 'वह मैं हूँ' इस प्रकार न जानकर देह को मैं मानकर उसकी शुद्धि के लिये बाहर के कल्पित तीर्थों में देव दर्शन करता है तथा गंगा आदि नदियों में स्नान करता है, वह तो मानो ऐसा मूर्ख है, जो स्वर्ण को फेंककर मिट्टी के ढेले का संग्रह कर रहा है । 'मैं ब्रह्म हूँ' इस ज्ञान रूपी अमृत का जिसने पान कर लिया है, उसके लिये अब अपने कल्याण सम्बन्ध में कुछ भी कर्म, उपासना करना शेष नहीं रह जाता है । यदि कोई अपनी कल्याण में कुछ कर्म, उपासना करना शेष है ऐसा मानता है तो फिर वह तत्त्वज्ञानी नहीं है । आत्म ज्ञानी सन्तों के लिये कुछ भी कर्तव्य नहीं है । ''**तस्य कार्यं न विद्यते**'' गीता : ३/१७

आकाश अखण्ड होने से उसका कहीं आना जाना नहीं होता, उसी प्रकार आत्म तत्त्व का ज्ञाता महात्मा भी कहीं जाता नहीं है । वह अपने आप में ही तृप्त सन्तुष्ट रहता है ।

योऽहं सर्वेषामधिष्ठाता सर्वेषां च भूतानां पालकः । सोऽहं पृथ्वी । सोऽहमापः । सोऽहं तेजः । सोऽहं वायुः । सोऽहं कालः । सोऽहं दिशः । सोऽहमात्मा । मयि सर्वं प्रतिष्ठितम् । ब्रह्मविदाप्नोति परं ।

–भस्मजाल उप.२

जो यह नाम रूप जगत् का अधिष्ठान है तथा सब भूत प्राणियों का पालक है, वही मैं पृथ्वी हूँ, वही मैं जल हूँ, वही मैं तेज हूँ, वही मैं वायु हूँ, वही मैं सब सृष्टि का काल हूँ, वही मैं सर्वत्र हूँ, वहीं मैं आत्मा हूँ । मेरे में ही यह सब नाम, रूप दृश्य जगत् प्रतिष्ठित हैं । ब्रह्म ज्ञानी ही अपने सहित सर्व जगत् को एक अखण्ड आत्मा जानकर भव बन्धन से मुक्त हो जाता है । अन्य जो इस आत्मा में भेद देखते हैं वे कभी मुक्त नहीं हो सकेंगे ।

जिनको आत्म तत्त्व का ज्ञान नहीं है अर्थात् जो अपने को साक्षात् आत्म रूप नहीं जानते हैं वह अवश्य वेदान्त तत्त्व का श्रवण करे । मैं तो अपने को ब्रह्म रूप जानता हूँ तो फिर मैं किस लिये व क्या पाने के लिये श्रवण करूँ ? जो संशय

से ग्रस्त हैं वे अवश्य मनन करे, मगर मैं तो संशय रहित अपने आत्म पद में दृढ़ रूप स्थित हूँ तो भला मैं क्यों मनन करूँ ? अन्य के अभाव में मुझे किसी से विक्षेप नहीं होता है तो मैं ध्यान, समाधि साधन किस अप्राप्त की प्राप्ति हेतु लगाऊँ ? जिसको विकार होता है, उसके ही मन को शान्त करने हेतु ध्यान समाधि कर्तव्य है । मैं नित्य अनुभव स्वरूप सहज समाधिस्थ ही हूँ तब फिर मुझे ध्यान समाधि करके किसका अनुभव होगा ? इस प्रकार निष्ठावान् ज्ञानी महापुरुष के लिये किसी प्रकार साधन की कर्तव्यता नहीं है ।

मैं कर्म का कर्ता हूँ तथा अन्य कोई इष्ट मेरे कर्मों का फल प्रदान करने वाला है, इस भेद बुद्धि के द्वारा ही जीव की किसी काम्य कर्म में प्रवृत्ति होती है । जबकि 'मैं पूर्णानन्द अखण्ड ब्रह्म हूँ', इसलिये मुझ आत्मा के अतिरिक्त कोई अन्य है ही नहीं तब इस प्रकार अद्वैत दृष्टि हो जाने वाले ज्ञानी पुरुष द्वारा भेद मूलक कर्म, उपासना कभी नहीं हो सकेंगे, यदि वह कर्म, उपासना करता है तो फिर उसे अज्ञानी ही जानना चाहिये ।

ज्ञानी अपने को परमानन्द स्वरूप अनुभव करता है । इसलिये वह अज्ञानियों की तरह धन, पुत्रादि अनित्य पदार्थों की प्राप्ति की इच्छा नहीं करता है । जिसको स्वर्गादि परलोकों में जाने की इच्छा है, वे भले ही सकाम कर्म करें किन्तु मैं तो सर्व लोकों का आत्मा हूँ, सर्व लोक मुझ में व्याप्त है, मैं सर्व लोकों में व्यापक हूँ । तब मैं अखण्ड परमानन्द स्वरूप आत्मा किस उदेश्य से कर्म को करूँ ? अतः कर्म करने से मेरा कोई प्रयोजन नहीं है ।

मैं क्रिया रहित अखण्ड, व्यापक ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है तब किसे उपदेश करूँ ? कौन बन्धन में है ? जिसकी दृष्टि में दृश्य जगत् एवं जीव है वही द्रष्टा उपदेश करने का विचार करे । जिन्होंने स्वरूप को नहीं जाना है, वे भले सद्गुरु की शरण ग्रहण कर वेदान्त महावाक्यों का श्रवण करे, किन्तु मैं तो स्वयं आत्म स्वरूप हूँ इसलिये मुझे श्रवण करने की भी क्या जरूरत ? जिन्हें अपने आत्म स्वरूप में संशय है, वे भले अभेद की साधक तथा भेद की बाधक युक्तियों द्वारा अद्वितीय ब्रह्म का मनन करे । मैं स्वयं ब्रह्म स्वरूप हूँ और जब मुझ में संशय ही नहीं तब किसका चिन्तन, मनन करूँ ? क्योंकि चिन्तन मनन तो अन्य का किया जाता है, जिसको विपर्यय बुद्धि है अर्थात् अपने में देह बुद्धि एवं ब्रह्म में

अन्य बुद्धि है ऐसी जिनकी मलिन बुद्धि है वे भले विजातीय वृत्तिका तिरस्कार एवं सजातीय वृत्ति का प्रवाह रूप निदिध्यासन करे किन्तु मुझ में देहाध्यास ही नहीं तो मैं निदिध्यासन भी किस भ्रम को दूर करने हेतु करूँ ? भेद बुद्धि वाला ही ध्यान करे, कर्म, उपासना, ध्यानादि मेरे लिये यह शोभनीय नहीं है ।

ज्ञानामृतेन तृप्तस्य कृतकृत्यस्य योगिन ।
नैवास्ति किञ्चित् कर्तव्यमस्ति चेतन स तत्त्ववित् ।।

–जाबाल दर्शनोपनिषद्

इस संक्षिप्त शिव गीता का संकलन पद्म पुराण के उत्तरखण्ड से किया गया है । जिस समय रावण द्वारा सीता हरण किये जाने के कारण श्रीराम अत्यन्त दुःखी थे तब उस दुःख निवारणार्थ श्रीराम को शिवजी द्वारा ब्रह्मज्ञान का उपदेश किया गया है । जिसे श्रीराम ने श्रद्धा व एकाग्रता पूर्वक श्रवण कर सीता के वियोग अग्नि को शान्त किया था ।

पुराणों में विष्णु, नारद, भागवत, गरुड, बराह और पद्म पुराण सात्त्विक श्रेणी में कहे जाते हैं ।

ब्रह्माण्ड, ब्रह्मवैवर्त, मार्कण्डेय, भविष्य तथा वामन पुराण राजसिक श्रेणी में कहे जाने हैं ।

शिव, लिंग कुर्म, मत्स्य, स्कन्द और अग्नि पुराण तामसिक श्रेणी में माने जाते हैं ।

उपरोक्त पुराणों में अवतार, देवता, भक्तों की महिमा है और अन्य किसी में तप, तीर्थ, व्रतों का वर्णन है । साधक अपनी श्रद्धा एवं इच्छानुसार उन पुराणों का अध्ययन करें किन्तु यहाँ शिव गीता में तो आप केवल ब्रह्मज्ञान की महिमा एवं ब्रह्मप्राप्ति के साधन को ही विशेष रूप से जान सकेंगे ।

प्रथम अध्याय

सूतजी कहते हैं – हे शौनकादिकों ! मेरी बात को सावधान मन से श्रवण करो अब मैं कैवल्य मुक्ति दायक एवं संसार दुःखों को छुड़ाने में महाऔषधि रूप इस शिव गीता का वर्णन करता हूँ । जिसके श्रवण मात्र से जीव मुक्ति को प्राप्त होता है । इसी विद्या का उपदेश पूर्वकाल में स्कन्दजीने सनत्कुमार को किया था । फिर सनत्कुमार द्वारा व्यासजी को यह ज्ञान प्राप्त हुआ था और व्यासजी की कृपा से वह ज्ञान शिव गीता के रूप में हमें प्राप्त हो रहा है । अतः दण्डकवन में जीव कल्याण हेतु श्रीराम जी को निमित्त बना कर सुनाई गई इस शिव गीता को परम गुप्त एवं परम कल्याण रूप उपदेश जानो । ध्यान रहे इस शिव गीता उपदेश को आज्ञाकारी श्रद्धालु, पुत्र या शिष्य के अतिरिक्त अन्य किसी को मत कहना ।

यह शिव गीता देवताओं को भी अच्छी नहीं लगती है, इसलिये वे श्रोताओं के शरीर में रोगरूप में या मन में अश्रद्धा रूप में प्रवेश कर उन्हें इस शिवगीता उपदेश श्रवण में विघ्न करते हैं, ताकि वे इस ब्रह्मज्ञान रूप शिवगीता उपदेश का पूरा श्रवण न कर सकें । क्योंकि आत्मज्ञान को प्राप्त पुरुष के लिये किसी प्रकार के अग्नि होत्रादिक कर्म करने की आवश्यकता नहीं रहती है, जिसके फल स्वरूप देवताओं को मिलने वाला भोजन या सुख की प्राप्ति नहीं होती है, इसलिये वे दुःखी होकर विघ्न पहुँचाते हैं ।

इन्द्रियन सुरन न ज्ञान सुहावहि ।
विषय भोग पर प्रीति सदाई ।।

रामायण में देवताओं की उपासना करने वाले को बिना सींग पूछ के प्राणी कहा है ।

ब्रह्म स्वरूप मिमि अन्योऽसावन्योऽहमस्मीतियेविदुस्ते पशवो ।

अपना रूप ही ब्रह्म है । जो अपने को ब्रह्म से भिन्न मानकर अन्य देवी–देवताओं का उपासना करता है वह मनुष्य नहीं है प्रत्युत वह तो देवताओं का साक्षात पशु ही है ।

–नारद पारिब्राजक नवमोपदेश

इस नाम, रूप सृष्टि के उत्पत्ति से पूर्व एक ही सत ब्रह्म था, उसने संकल्प किया कि मैं सर्व रूप होजाऊँ और वह तद्रुप हो गया । इस आत्म तत्त्व को आज भी कोई इस प्रकार से जानता है कि वह ब्रह्म मैं ही हूँ तो वह इस ज्ञान से अपने को अखण्ड रूप से जान लेता है । ऐसे आत्मवेत्ता को कोई भी देवता या भूतादि परास्त नहीं करपाता है । क्योंकि वह आत्मज्ञानी इन सभी देवताओं एवं भूत, प्रेतादि का भी आत्मा हो जाता है ।

जो इस प्रकार से जानता है कि यह आराध्य देव अन्य है और मैं इससे भिन्न हूँ । इस प्रकार से जो कोई अपने को देवता से भिन्न जान कर उपासना करते हैं वह अज्ञानी परमार्थ तत्त्व को नहीं जानते हैं ।

जैसे लोक में भार ढ़ोने वाले पशु होते हैं, वैसे ही वह भेदवादी देवताओं का पशु होता है । जैसे लोक में बहुत पशु अपनी जीविका को प्रदान करने वाले स्वामी का भार वहन करते हुए उसकी सेवा ही करते हैं । वैसे ही हविष्यान्न प्रदान करके एक–एक मनुष्य भी देवताओं की सेवा करता है । उन पशुओं में जैसे एक पशु का भी अपहरण होने पर मनुष्य को अप्रिय लगता है, फिर भला जिस मनुष्य के सभी पशुओं का अपहरण जाय तो उसके दुःख की कल्पना नहीं की जा सकेगी ।

देवताओं को यह बात सर्वथा प्रिय नहीं है कि मनुष्य ब्रह्म स्वरूप आत्मतत्त्व को जानकर हम देवताओं की दासता से मुक्त हो सके ।

–बृहद् अप. १/४/१०

हे आत्मन् ! तुम इस अन्तःकरण की वृत्ति के द्रष्टा को अन्य घट, पटादि पदार्थों की तरह दृश्य रूप नहीं देख सकोगे । वैसे ही श्रुति के श्रोता को नहीं सुन सकोगे । मति के मन्ता का मनन नहीं कर सकोगे । बुद्धि वृत्ति रूप विज्ञति के

विज्ञाता को नहीं जान सकोगे ।

तुम्हारा यह मैं रूप आत्मा ही सर्वान्तर है, इससे बाहर कुछ भी नहीं है । इससे भिन्न कारण कार्य रूप देह नश्वर है ।

–३/४/२ बृहद.उप.

यह आत्मा दिखाई नहीं देता है, किन्तु सबको देखता है, सुनाई नहीं देता किन्तु सबको सुनता है, मनन करने का विषय नहीं है, किन्तु मनन करने वाला है । जो विशेष रूप से ज्ञात नहीं होता किन्तु विशेष रूप से सबको जानता है । इस देह में जो मैं रूप आत्मा है यह अन्तर्यामी अमृत है । इससे भिन्न सब नश्वर है ।

–३/७/२३ बृहद्. उप.

यह अक्षर किसी की दृष्टि का विषय नहीं होता है किन्तु स्वयं दृष्टि रूप होने के कारण द्रष्टा है । वैसे ही श्रोत्र का विषय नहीं है किन्तु स्वयं श्रुति रूप होने से श्रोता है । मनन का विषय नहीं है किन्तु स्वयं मति रूप होने से मन्ता है । बुद्धि का अविषय होने से स्वयं अविज्ञात होने से दूसरों का विज्ञाता है ।

इससे भिन्न कोई द्रष्टा नहीं, इससे भिन्न कोई श्रोता नहीं, इससे भिन्न कोई मनन कर्ता नहीं और न इससे भिन्न कोई विज्ञाता ही है ।

–३/८/११ बृहद्.उप.

इस दृश्य अनात्म जगत् को प्रकाशित करने वाला सूर्य अपने आत्म स्वरूप ब्रह्म में प्रकाशित नहीं होता है । चन्द्रमा, तारे, विद्युत भी वहाँ प्रकाशित नहीं होते हैं, फिर भला यह अग्नि उसे क्या प्रकाशित कर सकेगी ? उसके प्रकाशित होने पर ही यह सब दृश्य जगत् एवं सूर्य, चन्द्र, तारे आदि प्रकाशित होते है ।

–२/२/१० मुण्डक उप.

अस प्रभु छाड़ि भजहि जे आना
ते नर पशु बिन पूछ विशाना ।

जब शिवजी की कृपा से यह प्राणी दृढ़ भक्तिमान होता है तब देवता विघ्न करना छोड़ भयभीत हो चले जाते हैं । फिर उस भक्त को पुर्ण आत्मज्ञान होता है और आत्मज्ञान से मुक्ति हो जाती है ।

द्वितीय अध्याय

सूतजी बोले हे शौनकादि कों ! जिस समय जनक कुमारी सीता को रावण ने हरण किया था तब रामचन्द्र वियोग के कारण बहुत दुःख तथा भोजन त्याग कर रातदिन शोक करते हुए प्राण त्याग करने की इच्छा कर चुके थे ।

अगत्स्यजी यह बात जानकर दण्डकारण्य में रामचन्द्र जी के समीप आये और मुनि ने रामचन्द्रजी को देह एवं संसार की नश्वरता को बहुत अच्छी तरह विस्तार से समझाया, वह मैं तुमसे कहता हूँ ।

अगस्त्यजी ने कहा – हे राम ! तुम क्यों शोक के सागर में डूबे हो ? तब रामने कहा – हे मुनिजी ! मेरी पत्नी सीता का रावण ने हरण कर लिया है, अब मैं अपनी प्राण वल्लभा के बिना जीवित रह नहीं सकूँगा । यदि वह मुझे नहीं मिली तो अब मैं अपने प्राण त्याग कर देने का निश्चय कर चुका हूँ । मेरी बुद्धि उसके वियोग में मूढ़ता को प्राप्त हो गई है । अरे राम ! यही उपदेश तो तुम अभी तारा को पति बाली के मारे जाने पर देकर आ रहे हो । किसी ज्ञानी ने ठिक कहा है –

पर उपदेश कुशल बहुतेरे । जो राखई ते नर न घने रे ।।

राम के विषाद एवं मोह को देख अगस्त्यजी ने कहा स्त्री किसकी इसका तो विचार करो ?

क्षति जल पावक गगन समीरा पंच रचित अति अधम शरीरा ।

यह शरीर जिसके वियोग में तुम दुःखी हो रो रहे हो, वह स्त्री शरीर या जिसे तुम अपना शरीर मानते हो यह व्यावहारिक दृष्टि से माता–पिता के खाये अन्न जल का अन्तिम परिणाम रज–वीर्ज का पिण्ड ही तो है । रज–वीर्य धातु का स्पर्श, दर्शन, भक्षण, गंध किसी को नहीं सुहाता है, क्योंकि वह अत्यन्त घृणित व

गन्दी धातु मानी जाती है । इसीलिये तो उस धातु से निर्मित होने के कारण इस शरीर को अधम कहा जाता है ।

हे राम ! अज्ञान नींद से उठो एवं अपने नित्य शुद्ध आत्म स्वरूप में जागो । यह शरीर जन्म के क्षण से ही प्रति श्वाँस-प्रश्वाँस में मृत्यु की तरफ जा रहा है । जिसका जन्म है, उसकी मृत्यु निश्चित ही है । जिसका संयोग हुआ है, उसका वियोग होना निश्चित् ही है ।

''जातस्य हि ध्रुवं मृत्यु''

हे राम ! सावधान मन से सुनो ! मैं तुम्हारे मोहान्ध पने को दूर करने के लिये एक उदाहरण देता हूँ । नदी के किनारे वृक्ष की सुखी डाल टूट नदी में गिर बह रही थी कि उसी समय दूसरे वृक्ष की डाल टूट नदी में गिर गई । दोनों डाले कुछ दूर तक चिपक कर, आलिंगन करते हुए बहने लगी कुछ समय प्रेम पूर्वक दोनों मिलकर यात्रा करते जा रहे थे कि अचानक एक बड़ी चट्टान से टकरा गई व दोनों का वियोग हो गया । अब दोनों एक दूसरे किनारे से बहने लगी, फिर उन्हें किसी दूसरी डाल का संयोग प्राप्त हो गया फिर उसी तरह बहने लगी ।

हे राम ! इसी प्रकार जिसे तुम अपनी पत्नी सीता कहते हो, वह एक जनक परिवार की डार है, तुम एक दशरथ परिवार की डार हो, दोनों संसार नदी में कुछ समय साथ-साथ बह रहे थे, अब प्रारब्ध चट्टान से टक्कर हो जाने से अलग-अलग हो बहने लगे; अतः तुम्हारा इस नश्वर विकारी शरीर में मोह करना घोर अज्ञान एवं दुःख का कारण है । हे राम ! यह तुम्हें ज्ञात है ही कि योगी भरत की हरिण बालक में आसक्ति हो जाने के कारण उसके दो जन्म नष्ट हो गये । अतः तुम सावधान मन से विचार करो और इस सीता शरीर के प्रति मोह का त्याग करो । उस सीता में तुम्हारा क्या था ? वह तो पंच भूतों का कार्य था । कार्य सदा कारण का ही होता है । कार्य-कारण स्वरूप ही होता है, अतः उसमें तुम्हारा क्या था जो चला गया और जिसके वियोग में तुम अन्न जल का परित्याग कर आत्म हत्या करने को प्रस्तुत हो रहे हो ।

हे राम ! तुम सावधान मन से सुनो ! मैं तुम्हें इस देह के प्रति मैं भाव एवं देह के सम्बंधियों के प्रति जो मेरा भाव उदय हुआ है उसे दूर करने के लिये एक

सिद्धान्तिक बात समझाता हूँ । जैसे तुम हम अपने से पृथक आकाश, वायु, तेज, जल एवं पृथ्वी महाभूत रूप संसार को दृश्य रूप में देखते हैं एवं इस शरीर सहित अपने को उन भूतों से पृथक् द्रष्टा रूप देखते हैं । परन्तु हमें द्रष्टा-दृश्य का ठीक से विवेक करना नहीं आता है । इसलिये हम देह व देह सम्बन्धियों के प्रति अहंता-ममता के जाल में फंस जाते हैं ।

हे राम ! यह बात याद रखो कि जो दिखाई पड़ता है किन्तु कभी देख नहीं सकता उसे दृश्य कहते हैं । जैसे यह जड़ शरीर का पुतला दृश्य होने के कारण दिखाई तो पड़ता है किन्तु यह कभी देख नहीं सकता अब राम ! तुम द्रष्टा का विचार करो जो सबको देखता है किन्तु उसे कोई नहीं देख सकता है, उसे द्रष्टा कहते हैं जैसे तुम सब को देखते हो, किन्तु तुम्हें कोई नहीं देख सकता । जो दिखता है वह शरीर एवं जो देखता है वह तुम उससे भिन्न द्रष्टा चैतन्यात्मा हो । शरीर दिखता है किन्तु देख नहीं सकता । तुम देखते हो किन्तु किसी को दिखाई नहीं देते ।

हे राम ! अभी विचार करके देखो तो तुम्हारा शरीर भी बाह्य पंच भूत की तरह दृश्य अनात्म एवं जड़ ही है । यह तुम नहीं हो और न यह तुम्हारा ही है । क्योंकि यह शरीर पंचभूतों का कार्य होने से अपने कारण आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी का ही है उन से पृथक नहीं है । हे राम ! यह अकाट्य सिद्धान्त है कि कोई कार्य कारण से भिन्न नहीं होता है । कार्य कारण की सदा अभिन्नता ही रहता है । जैसे स्वर्ण व अलंकार, लोह व मशीन, मिट्टी व घड़ा, लकड़ी व कुर्सी, टेबल, खिड़की, दरवाजा इत्यादि इसी प्रकार व पंचभूत व सब जीवों का शरीर सर्वदा पंचभूतों से स्वर्ण अलंकार की तरह अभिन्न ही है ।

अतः हे राम ! जो हमें अभी अलंकार दिखाई दे रहे हैं, यह एक मात्र स्वर्ण ही अलंकार रूप में दृष्टिगोचर हो रहा है । यह जो घड़ा दिख रहा है, यह एक मात्र मिट्टी ही का दर्शन घड़े नाम, रूप में प्रतीत हो रहा है । इसी प्रकार यह जो तुम्हारा या सीता नाम-रूप शरीर दिखाई दे रहा है, यह एक मात्र पंचभूत का ही शरीर रूप में दर्शन किया जा रहा है । अस्तु ! तुम इस दशरथ पुत्र राम एवं जनक पुत्री सीता शरीर से पृथक् एक मात्र दष्टा साक्षी असंगआत्मा ही अपने को यथार्थ रूप में जानो । हे राम ! इस सिद्धान्त को हृदय में धारण करो तो तत्काल तुम्हारा

देहाध्यास दूर हो सकेगा । फिर न तुम अपने को दशरथ पुत्र राम कहोगे और न जनक पुत्री सीता को अपनी पत्नी कह सकोगे ।

हे राम ! जैसे एक ही सूत से बने पुरुषों को पहनने वाले वस्त्र को धोती एवं स्त्रियों के पहने वाले वस्त्र को साड़ी कहते हैं । जबकि दोनों के वस्त्र में कोई भेद नहीं है केवल उसकी किनारी बार्डर को छोटा-बड़ा रंग दे दिया जाता है । इसी तरह स्त्री-पुरुष दोनों के आकाश, वायु, तेज, जल, पृथ्वी भूत समान ही है । दोनों में केवल लिंग का नाम मात्र भेद है । स्त्री लिंग भीतर की और है और पुरुष लिंग बाहर की ओर है । अतः हे राम ! तुम अब निश्चय करो कि न तुम पुरुष हो, न पति हो, तुम्हारी कोई पत्नी है, यह सब पंचभूत मात्र है । जैसे कोई हलवाई चीनी (शुगर, शक्कर) के राजा, रानी, हाथी, घोड़ा, सैनिक बनादे तो वहाँ नाम रूप की भिन्नता में एक मात्र चीनी के अतिरिक्त अन्य कुछ नहीं है । राजा, रानी, सैनिक, हाथी, घोड़ा रथादि नाम मात्र की प्रतीति है ।

सब खिलौना खांड के, खांड खिलोना माहि ।
ऐसे सब जग ब्रह्म में, ब्रह्म जगत के माहि ।।

हे राम ! इसी तरह समस्त जगत् का अधिष्ठान एक मात्र सत ब्रह्म ही है । जैसे मन्द अन्धकार में पड़ी रस्सी में सर्प की लम्बाई, मोटाई प्रतित होती है । परन्तु वहाँ सर्प की प्रतीति में रस्सी अधिष्ठान ही सर्पाकार में दृष्टिगोचर हो रही है । वैसा ही अध्यस्त प्रपंच का अस्तित्व अधिष्ठान ब्रह्म सत्ता पर ही अवलम्बित हो भास रहा है । ब्रह्म सत्ता ही प्रपंच के आधार रूप होकर बर्तती है । इसी प्रकार समस्त शरीरों का आधार पंचभूत ही राम-सीता या जगताकार भासमान हो रहा है ।

जैसे समुद्र तरंगो में एक मात्र जल ही व्याप्त है, इसी प्रकार समस्त शरीरों में पंचभूत ही विद्यमान है । जैसे गन्ने रस में शकर व्याप्त है वैसे ही शरीर में पंचभूत व्याप्त है । जैसे पानी में बुलबुला कल्पित रूप है उसी प्रकार वीर्य में शरीर एक कल्पित रूप है ।

जिस प्रकार घड़े को प्रकाशित करनेवाला सूर्य घट नाश होने से नष्ट नहीं होता, इसी प्रकार देह के नाश होने से देह का प्रकाश साक्षी आत्मा का भी कभी नाश नहीं होता है ।

बड़े भाग्य मानुष तन पावा–सुर दुर्लभ सद ग्रन्थ गावा ।
साधन धाम मोक्ष कर द्वारा । पाइन जेही परलोक सवांरा ।

जो न तरे भव सागर, नर समाज असपाई ।
सो कृत निन्दक मंद मति, आतमहन गति जाई ।।

रामने पूछा – हे महा मुने ! मैं आत्म हत्यारा कैसे हो सकता हूँ ?

अगस्त्य जी ने कहा – हे राम ! अनादि से जीव देहाभिमान में ही जीता आ रहा है, जब जो शरीर मिला उसी हाथी, घोड़ा, गधा, कुत्ता, सुअर आदि शरीर को मैं मानता आ रहा है । प्रभुकृपा से प्राप्त यह मानव जीवन ही जीव के वास्तविक आत्मस्वरूप को जानने का एक सुअवसर है, यदि जीव इस देव–दुर्लभ मानव जीवन को पाकर भी आत्म भाव को जाग्रत नहीं किया तो यह आत्म हत्यारे की गति को प्राप्त होता है, क्योंकि आत्मभाव मनुष्य के अतिरिक्त फिर अन्य किसी योनि में तो जाग्रत नहीं हो सकेगा । इस दृष्टि कोण से यह जीव आत्म भाव को नष्ट करने के कारण हत्यारा होकर ८४ लाख योनियों में बारम्बार भटकता हुआ दुःख पाता रहेगा । अस्तु हे राम ! तुम मोह निद्रा से जाग कर अपने आत्मभाव में उठ बैठो । ताकि तुम आत्महत्या के महापाप से बच सको ।

हे राम ! आत्मा देह से सदा असंग व निर्लेप है । यह न शस्त्र से कटता है, न अग्नि से जलता है, न यह पानी से भीगता है और न यह पवन से सूखता है ।

आत्मा तो निर्लेप सर्वत्र परिपूर्ण सच्चिदानन्दस्वरूप है । आत्मा न कभी उत्पन्न होता है, न मरता है और न कभी दुःख भोगता है, जैसे सूर्य अपने सम्मुख संसार के सभी जीवों के शुभाशुभ कर्मों को प्रकाशित करता हुआ, देखता हुआ भी किसी शुभाशुभ कार्य करने वाले जीवों के पुण्य पाप का भागी नहीं बनता है ।

अगस्त्य ऋषि ने कहा – हे राम ! सावधान होकर सुनो ! जिसे अर्धागंनी कहते हैं, वह स्त्री या पुरुष शरीर एक मल का पिंड एवं जड़ स्वरूप है । वह न कुछ देख पाता है, न सुन पाता है, न सूंघ पाता है, न खा पाता है, न बोल पाता है, न उठ–चल पाता है । यह तुम्हारा व सीता का शरीर इसी प्रकार निर्जीव, जड़, शव मात्र है । अतः हे रामचन्द्र ! बुद्धि से विचारों एवं उसके चले जाने का, उसके हरण हो जाने का या मर जाने का शोक – मोह का मन से त्याग करो ।

हे राम ! पंचभूतों से उत्पन्न सबके शरीर पांचभौतिक होते हैं। जो तुम्हारें प्राणों से भी अधिक प्यारी है, वही सीता तुम्हारे दुःख का ही प्रत्यक्ष कारण हो रही है ।

हे राम ! जिस जीव का इस जड़ शरीर में मोह होता है वह जीव चौरासी लाख योनियों में भटक-भटक अतिशय दुःख भोगता है । जीव न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है । **आकर लक्ष चार चौरासी, योनि भ्रमत यह जीव अविनाशी ।** यह जीव न ब्रह्मचारी है, न गृहस्थी है, न वानप्रस्थी है और न यह संन्यासी है । न यह हिन्दु, मुस्लिम, जैन, बौद्ध, सिक्ख, इसाई है, न यह पंजाबी, बंगाली, सिन्दी, हिन्दी, गुजराती, मारवाडी है । न यह जीव ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शुद्र जाति वाला है ।

हे राम ! यह जीव जिस शरीर को धारण करता है, उसी शरीर में अपने होने का अभिमान कर लेता है । परन्तु उन सबमें आत्मा एक परिपूर्ण सनातन है, इस विचार से कौन स्त्री, कौन पुरुष, कौन हिन्दु, कौन इसाई, कौन अपना, कौन पराया है ? भूत दृष्टि से सब ही सहोदर हैं ।

जैसे अखण्ड आकाश अनेक गृह निर्माण से खण्ड- खण्ड नहीं होता एवं नगर के ध्वंस हो जाने पर, जल जाने पर आकाश की कोई हानि नहीं होती है । इसी प्रकार सभी देहों में आत्मा सनातन है, जो देह सम्बन्ध से अनेक प्रकार का प्रतीत होता है, परन्तु उनके नाश होने पर आत्मा नष्ट नहीं होता है । वह सदा एकरस, अखण्ड एवं निर्लेप बना रहता है ।

हे राम ! जो इस अविनाशी आत्मा को मारने वाला जानता है कि मैंने मारा और जो अपने को मरने वाला जानता है कि मैं मरा, ऐसा विचार करने वाले दोनों मूर्ख है । कारण कि न यह आत्मा कभी किसी को मारता है और न यह कभी किसी के द्वारा मारा जाता हैं । २/२१

हे राम ! अब तुम मुझसे इस शरीर की रचना के सम्बन्ध में विशेष रूप से जानो ताकि तुम्हारा देह भाव मन से निवृत्त हो तुम आत्म भाव में प्रतिष्ठित हो सको ।

यह शरीर आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी से गठित होने से पंचभूतात्मक है । मधुर, तिक्त, कटु, कषाय, अम्ल और लवण इन छः रसों से पोषित यह देह छः आश्रय वाला है । इस में कठिन तत्त्व हाड़, दन्त, नाखुन, केश, त्वचा, मांस, नाड़ी आदि पृथ्वी तत्त्व है, मूत्र, रज, वीर्य, लार, स्वेद तरल तत्त्व जल तत्त्व है, शरीर में उष्णता वह तेज की है, जो सम्पूर्ण शरीर में संचार करता है वह वायु तत्त्व है, जहाँ नाक, कान, मुख पेटादि में खाली पना है वह आकाश तत्त्व है ।

इसमें पृथ्वी तत्त्व का कार्य धारण करना, जल तत्त्व का कार्य एकत्रित करना, तेज का कार्य प्रकाश करना, शरीर को गर्म रखना, वायु का कार्य प्रत्येक जोड़ों को संचालन करना और आकाश का कार्य सभी को अपने में अवकाश देना है ।

इसमें पांच ज्ञानेन्द्रियाँ श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण है वे अपना शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गंध क्रम से ग्रहण करती है तथा वाक् पाणि, पाद, लिंग, गुदा यह पाचों कर्मेन्द्रियाँ अपना बोलना, ग्रहण-त्याग, उठना-चलना, मूत्र-मैथुन तथा मल त्याग का कार्य करते रहते हैं । मन का कार्य संकल्प-विकल्प, बुद्धि का कार्य निश्चय करना है इसी बुद्धि के द्वारा देह भाव ग्रहण करने से जीव को बन्धन एवं आत्मभाव द्वारा मोक्ष प्राप्ति होती है ।

हे राम ! मनुष्य के द्वारा खाये-पिये अन्न जलसे शरीर में प्रथम रस बनता है, रससे रक्त उत्पन्न होता है, रक्त से मांस होता है, मांस से भेद, भेद से स्नायु, स्नायु से अस्थि, अस्थि से मज्जा, मज्जा से शुक्र उत्पन्न होता है । इस प्रकार यह शरीर सात धातुओं से आकार रूप में प्रकट होता है । स्त्री-पुरुष के सन्भोग में पुरुष के घर्षण से जब शुक्र दो भागों में विभाजित हो जाता है तब युग्म सन्तान उत्पन्न होती है । जिसे जुड़वा कहते हैं । पुरुष के शुक्र की बहुतायत से लड़का व स्त्री के रज को बहुतायत से लड़की शरीर निर्मित होता है । रज-वीर्य के समान होने से नपुंसक सन्तान होती है । दुःखी, चिन्तित, क्रोधित अवस्था या विपरित सम्पर्क से कैसे अन्धी, बोनी सन्तान होती है ।

हे राम ! ऋतु समय उचित प्रकार से गर्भाधान होकर शुक्र और शोषित के योग से एक रात्रि में कलल और सात रात्रियों में बुद्बुद् बनता है । एक पक्ष में पिण्ड बनता है एक मास में कठिन होता है दो मास में सिर बनता है, तीन मास में हाथ पाँव बनते हैं । चौथे मास में घुटने, पेट, और कमर बन जाती है, पाँचवे मांस में पुष्ट, रीढ़ और छठे मास में मुख, नाक, कान, नेत्र आदि बनते हैं । सातवे मासमें जीव को पुराने हजारों जन्मों का दृश्य मनमें प्रकट होता है और देखता है कि किन-किन योनियों में जाकर मैंने क्या-क्या कष्ट भोग किया, किन किन योनियों का स्तन पान किया एवं मैथुन किया । हर योनि में एक नूतन जाति, माता-पिता को प्राप्त किया । उन-उन परिवार में रहकर उनके हित में नाना प्रकार के नहीं करने जैसे कुकर्मों को भी किया वे सब कहाँ-कहाँ चले गये और मैं आज अकेला ही इस गर्भ कारागृह रूप रोरव नरक में महान दुःख भोग रहा हूँ, अब उससे निकलने का कोई उपाय मुझे समझ में नहीं आ रहा है ।

हे राम ! इस प्रकार जीव अपने वास्तविक आत्म स्वरूप के अज्ञान से अनित्य देह में अहंता ममता में फंसकर आत्महत्या करलेता है, फिर उस पाप कर्म के फल स्वरूप नरक यातना का दुःख पाता है । तब वह वहाँ पश्चाताप करता है और कहता है कि यदि अब कोई मुझे इस गर्भ यातना से मुक्ति दिलादे तो मैं मुक्ति प्रदाता महेश्वर की शरण ग्रहण करूँगा । जब मैं इस योंनि से मुक्त हो जाऊँगा तब मुक्ति के साधन रूप ज्ञान को प्राप्त करूँगा एवं इस नश्वर देह व देह के झूठे सम्बन्धियों में फंसकर अपनी दुर्गति नहीं होने दूगाँ । यदि में गर्भ योनि से निकल गया तो केवल ब्रह्मचिन्तन करने में ही अपने मन को लगाऊँगा । इस प्रकार बहुत कष्ट पाते हुए यह जीव ईश्वर कृपा से गर्भ यन्त्रणा से मुक्त हो पाता है । परन्तु हे राम ! पुनः यह जीव गर्भ से बाहर आते ही माया का स्पर्श होते ही गर्भ में नारायण से प्राप्त सोऽहम् चिन्तन को भूल जाता है एवं पुनः देह एवं देह सम्बन्धियों से अहंता-ममता कर बन्धन को प्राप्त होता है । (गर्भोपनिषद)

अगस्त्य ऋषि ने कहा - हे राम ! इस कारण इस नश्वर देह के प्रति आसक्ति कर अति दुःख करने व शोक करने का कोई कारण ही नहीं बनता । अतः अपने अजर, अमर, अखण्ड, अविनाशी, असंग आत्म स्वरूप को इस प्रकार जान कर दुःख का त्याग करो । २/२२

अगस्त्य मुनि का तत्त्वोपदेश श्रवण कर रामने प्रश्न किया कि हे मुने ! जब देह को दुःख नहीं होता और आत्मा को भी दुःख नहीं होता है, तब सीता के वियोग की अग्नि मुझे क्यों जला रही है ? (२/२३) जो यह शरीर सदा मेरे अनुभव में आ रहा है, वह नहीं है, ऐसा मैं आपकी बात नहीं मान पाता हूँ । (२/२४) हे मुनि श्रेष्ठ ! मैं यह कैसे मानूं कि मुझे दुःख नहीं हो रहा है । जब दुःख-सुख भोक्ता मैं नहीं हूँ तब सुख दुःख का भोक्ता कौन है ? (२/२५)

अगस्त्य मुनि ने राम के मन का सन्देह श्रवण कर उसके समाधान हेतु कहा – हे राम ! जैसे जल से लहरे, अग्नि से स्फुलिंग उठते हैं इसी प्रकार परमात्मा के अंश रूप जीव सब प्राणियों के हृदय में प्रकट होते हैं ।

मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार यह चारों अन्तःकरण के ही भेद हैं । इस अन्तःकरण में चैतन्य आत्मा का प्रतिविम्ब पड़ता है, इस प्रतिबिम्ब को ही जीव कहा जाता है । (२/३०) । यही प्रकृति के द्वारा हुए कर्म में कर्तापन का अभिमान कर उस कर्म के फल का सुख-दुःख रूप में भोक्ता होता है एवं कर्म फलानुसार उन उन योनियों में प्रतिविम्बित होता रहता है । जबकि यह जीव निष्क्रिय, असंग, ज्ञान स्वरूप है किन्तु प्रकृति रूप शिवजी की माया से मोहित हो कर्मों में कर्तापन का अहंकार कर सुख-दुःख का भोक्ता होता है ।

यही अहंकार स्वप्न और जाग्रत में जीव को दुःखी करता है तथा सुषुप्ति में अहंकार के अभाव से यह जीव आनन्द को प्राप्त होता है । इस प्रकार स्वरूप ज्ञान से सभी जीव आनन्द स्वरूप है, वहाँ कोई दुःखी नहीं है । अतः हे राम ! तुम इस देहाभिमान का त्याग करो तथा नश्वर, विकारी, मल-मांस-हाड़, रज-वीर्य के कार्य रूप सीता में मोह कर क्यों वृथा दुःखी हो रहे हो ?

अगस्त्य मुनि के वचन सुनकर रामने कहा – हे मुनिराज ! जो तुमने मुझे तत्त्वोपदेश किया, यह सब यथार्थ है, तथापि भयंकर प्रारब्ध दैव का दुःख अधिक पीड़ित करता है । जैसे मद्यपान मनुष्य को उन्मत्त कर देता है, इसी प्रकार यह प्रारब्ध से प्राप्त दुःख भी मुझे दिन-रात पीड़ा दे रहा है । अतः हे मुनिवर ! मुझे सुख शान्ति प्राप्ति का कोई उपाय बतलाने की कृपा करें ।

हे राम ! जिस अविद्या अवस्था में द्वैत-सा प्रतीत होता है कि वह और है मैं उससे भिन्न हूँ, वहाँ ही अन्य-अन्य को देखता है । अन्य-अन्य को सूघँता है । अन्य-अन्य का रस लेता है । अन्य-अन्य को कहता है । अन्य-अन्य को सुनता है । अन्य-अन्य को छूता है । अन्य-अन्य का मनन करता है । अन्य-अन्य को विशेष रूप से जानता है । किन्तु हे राम ! इसके विपरीत जहाँ पर इस आत्मवेत्ता की दृष्टि में सब आत्मा ही हो गया आत्मैवेद सर्वं, ब्रह्मैवेदं सर्वं, अहं मैं वेद सर्वं फिर वहाँ -

किससे किसको देखे, किससे किसको सूंघे, किससे किसको कहे, किससे किसको स्पर्श करे, किससे किसको सुने, किससे किसका मनन करे, किससे किसको चाहे, किससे किसका स्वाद ले और किससे किसको जाने ?

जिसके द्वारा यह समस्त दृश्य, साक्ष्य को देखा एवं जाना जा रहा है, उस सर्वज्ञाता को भला किसके द्वारा जाना जावे ?

हे राम ! इस प्रकार अपने को अखण्ड, अद्वय, केवल आत्म रूप से जानकर सुख शान्ति का अनुभव किया जा सकता है अन्यथा सुख शान्ति प्राप्त करने का अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

शुद्ध, शान्त मन के द्वारा ही इस आत्म ब्रह्म को प्राप्त करना चाहिये । इस अखण्ड ब्रह्म सत्ता में मानव धर्म अणुमात्र कुछ भी नहीं है । जो पुरुष इस अविद्या रूप भेद दृष्टि का त्याग न करके नानात्व सा देखता है वह तो मृत्यु से मृत्यु को ही प्राप्त होता है ।(२/१/११) कठ. उप.

जो चेतन द्रष्टा साक्षी पुरुष इस देह में 'मैं रूप' में भास रहा है, वही ब्रह्म तत्त्व इस देह से बाहर अन्यत्र भी है । जो अन्यत्र ब्रह्माण्ड में है वही ब्रह्म इस पिण्ड शरीर में है ऐसी अभिन्नता, अखण्डता, अद्वयता होने पर भी जो उस में अपने से भिन्नता, नानात्व देखता है और उसे प्राप्तव्य रूप मानता है कि एक दिन में हर प्रकार के साधन कर प्राप्त कर रहूँगा । ऐसा भेददर्शी पुरुष मृत्यु से मृत्यु को प्राप्त करता है । अर्थात् पुनः पुनः जन्म-मरण को प्राप्त करता है । (२/१/१०, कठ.उप.)

हे राम ! यह आत्म तत्त्व सभी लोगों को सुनने के लिये नहीं मिलता है । दूसरे अभागे मलिन बुद्धिवाले सुनते हुए भी जिसे समझ नहीं पाते है । इस अपरोक्ष

आत्म तत्त्व का निरूपण करने वाला भी अनेकों में से कोई एक अत्यन्य विरला ही आश्चर्य रूप ही होता है । इसे प्राप्त करने वाला भी कोई एक विवेक वैराग्य, षट् सम्पत्ति तथा मुमुक्षुता की पात्रता वाला ही होता है । तथा कुशल आचार्य से उपदेश किया हुआ ज्ञाता पुरुष अर्थात् श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ महापुरुष भी दुर्लभ है । (२/७ कठ.उप/ गीता २/२९)

हजारों मनुष्य में कोई एक आत्म प्राप्ति के लिये यत्न करता है और उन यत्न करने वालों में से कोई एक आत्मभाव में स्थित हो 'मैं ही ब्रह्म हूँ' इसप्रकार साक्षात् अपरोक्ष अनुभव करता है । (गीता ७/३)

तृतीय अध्याय

अगस्त्यजी बोले – हे राम ! काम, क्रोधादि से पीड़ित मनुष्य को हितकारी वचन नहीं सुहाते । इसी कारण से बार–बार तत्त्व उपदेश करने पर भी तुम्हारे मन में प्रवेश नहीं कर पा रहा है । अतः मैं तुम्हें पुनः कहता हूँ । तुम सावधान मन से सुनों ! जिस सीता को रावण लंका ले गया है, उसे पाने के लिये तुम्हारा मन विकल हो रहा है, पर यह तो सोचो कि तुम अकेले उस महा पराक्रमी लंकेश रावण से युद्ध कर कैसे परास्त कर अपनी सीता को प्राप्त कर सकोगे ? सागर से पार लंका तुम कैसे पहुँच सकोगे, क्या यह भी तुमने विचार किया है ?

जो रावण शिवजी के वर से गर्वित हो सम्पूर्ण त्रिलोक को भोगता है और भय से रहित है, जिसके द्वारा समस्त देवता बांध लिये गये हैं और उनकी स्त्रियाँ जिसके यहाँ चमर ढुलाती है । उसका पुत्र इन्द्रजीत जो देवताओं को कई बार संग्राम में परास्त कर चुका है । उसका भाई कुम्भकरण बड़ा भयंकर राक्षस है जिसके पास करोड़ों चतुरंगिनी सेना है । हे राम ! फिर तुम अकेले उसे कैसे जीतोगे ? जैसे कोई बालक चन्द्रमा को हाथ में लेना चाहे, इसी प्रकार तुम काम से मोहित हुए उस महा पराक्रमी शूरवीर योद्धा से जीतने की इच्छा करते हो, यह तुम्हारी बात बच्चों जैसी हास्यप्रद लगती है ।

हे मुनि श्रेष्ठ ! मैं क्षत्रिय हूँ, मेरी पत्नी सीता का जिसने हरण किया है, उस शत्रु को यदि मैं न मारूँ तो मेरा जीवन धिक्कार ही है । मैं नामर्द नपुंसक नहीं जो तुम्हारी तत्त्वज्ञान की बाते सुन पत्नी को लाने की चिन्ता छोड़ दूँ । तुम्हारे तत्त्वबोध से मुझे कोई प्रयोजन नहीं है ।

हे मुनि श्रेष्ठ ! जिसको तत्त्वज्ञान की इच्छा हो वह लोक के पुरुषों में नीच व नपुंसक है । इस कारण मैं समुद्र लांघकर उस दुष्ट दुराचारी रावण को किस प्रकार मार सकूँगा, इसका यदि कोई उपाय आप जानते हैं तो मुझ दुःखी जीव पर दयाकर बताने की कृपा करें, क्योंकि आप मेरे श्रेष्ठ गुरु हैं और मुझ शरणागत की रक्षा करना आपका कर्तव्य है, मेरा कोई अन्य गुरु नहीं है ।

राम के मनसे जब सीता के प्रति मोह को निवृत्त होते नहीं देखा तब अगस्त्यजी ने कहा कि जब तुम्हारी इतनी प्रबल इच्छा सीता को लाने के लिये है, तो हे राम ! तुम शिवजी की शरण में जाओ, वे तुम्हारी सेवा, भक्ति से प्रसन्न होकर मन इच्छित वरदान देंगे । अन्यथा वह रावण शिवजी की कृपा के बिना तुमसे कैसे मारा जासकेगा ?

अगस्त्य मुनि के सुझाव को श्रवण कर रामचन्द्र के मन में निराशा के स्थान पर सीता को प्राप्त करलेने की आशा की किरण उदय हुई मन पर प्रसन्नता प्रकट हुई । राम ने मुनिजी को दण्डवत् प्रणाम किया एवं कहा कि– हे मुनि ! मैं कृतार्थ हो गया, मेरे कार्य सिद्ध हो गये । जब समुद्र का पान करने वाले आप मेरे ऊपर प्रसन्न हैं तो फिर मुझे लंका पर चढाई कर रावण को मार सीता प्राप्त करना कोई कठिन कार्य नहीं लगता ।

सूतजी बोले – हे शौनकादिकों ! ऐसा कहकर अगस्त्यजीने राम को कहा कि मैं तुमको शिव सहस्त्रनाम देता हूँ, इसका तुम दिन रात जप करो । जो वेदों का सार है, जो शिवजी का प्रत्यक्ष दर्शन कराने वाला है । जब शिवजी प्रसन्न होंगे तब तुम्हें वे पाशुपत अस्त्र देंगे, जिससे तुम शत्रुओं को मारकर अपनी प्रिया सीता को प्राप्त कर सकोगे ।

उसी अस्त्र के प्रभाव से तुम सागर को शोख सकोगे । संहार काल में शिवजी इसी अस्त्र से जगत् का संहार करते हैं । उसके बिना पाये राक्षसों से जय पाना बड़ा दुर्लभ है । इस कारण इस अस्त्र को पाने के लिये तुम शोक, मोह एवं दुःख का त्याग कर शिवजी की शरण में जाओ ।

चतुर्थ अध्याय

अगस्त्य मुनि के उपदेशानुसार रामगिरी के ऊपर गोदावरी के पवित्र आश्रम में रामचन्द्र शिव लिंग की स्थापना कर शिव सहस्त्रनाम को जपने लगे । साधन काल में राम एक एक माह केवल फल, पत्ते, जल तथा पवन का भोजन कर अत्यन्त कठिन तप करने लगे, तब शंकर-पार्वती प्रकट हो राम को दर्शन दिया ।

हे राम ! जब तक जीव ब्रह्म तत्त्व को सम्यक रूप से अर्थात् अपने देहभाव की दृढ़ता की तरह 'मैं ब्रह्म हूँ', इस तरह नहीं जानता है तब तक यह अपने जन्म मरण के चक्र से मुक्त नहीं होता है ।

हे राम ! मन, वाणी और शरीर द्वारा किसी प्राणी को कष्ट न पहुँचाना, हिंसा न करना '**तपोयज्ञ**' कहलाता है । नाना उपनिषदों का अभ्यास करना यह स्वाध्याय यज्ञ है ।

इसी प्रकार से अपने से अपने को जो ब्रह्माग्नि में सदायज्ञ करता है, नदी जैसे सागर में अपनी सत्ता को विलय कर देती है, इसी तरह जीव, ब्रह्म में अपना व्यष्टिभाव विलय करता है, वह '**ज्ञान यज्ञ**' है । और में इसी ज्ञान यज्ञ द्वारा ही पूजित होता हूँ । यह ज्ञानयज्ञ तो समस्त द्रव्यमय यज्ञों से सर्वश्रेष्ठ उत्तम यज्ञ है ।

हे राम ! उस हृदय में निवास करने वाले परमात्मा का सोऽहम् रूप से जानकर ही यह जीव मृत्यु सागर से तर जाता है । इस हृदय स्थित परमात्मा को जानने के सिवा, उसकी प्राप्ति के लिये अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

हे राम ! जैसे तिलों में तैल, दधि में घृत, स्त्रोतों में जल, अरणियों में अग्नि अदृश्य रहता है वैसे ही हृदय में परमात्मा अदृश्य रूप से रहता है । इसलिये

प्रत्येक साधक को अपने अन्तर में निवास करने वाले ब्रह्म का ही ज्ञान करना चाहिये, इससे दूसरा कोई ज्ञातव्य पदार्थ नहीं है ।

हे राम ! व्यक्ति का न केवल धन कोई उपकार करता है न मित्र, न बान्धव, न शरीर को दिये क्लेश, न एकान्त वास, न तीर्थवास, न प्रतिमा पूजन से होता है किन्तु उसका कल्याण देहभाव की तरह अखण्ड ब्रह्मकार वृत्ति द्वारा होता है । उस परमतत्त्व की प्राप्ति अन्य कोई मार्ग नहीं है ।

हे राम ! अविचार से ही जीव बन्धन को प्राप्त होता है एवं आत्मविचार द्वारा ही मुक्त होता है । अतः कल्याण की इच्छा रखने वाले साधक को सर्वदा आत्म विचार करते रहना चाहिये । आत्म चिन्तन में प्रमाद ही मृत्यु है । ऐसा ब्रह्मवादि ज्ञानी जन कहते हैं ।

हे राम ! आत्मरूप चेतन्य तीर्थ का त्याग करके बाह्य तीर्थ में जो साधक भटकता है वह तो ऐसा मूर्ख व्यक्ति है जो हाथ में पकड़े हुए हीरे को त्याग कर कांच को ग्रहण करता है । कल्याणमयी परमात्मा इसी देह में मैं रूप से विराजमान है । उसे न जानने वाला मूर्ख ही तीर्थ, दान, जप, तप, यज्ञ, काष्ठ, धातु में ही परमात्मा को खोजा करता है । देव दूर्लभ मनुष्य जीवन प्राप्त करके तथा सर्वश्रेष्ठ बुद्धि प्राप्त कर के भी जो वेदान्त श्रवण, मनन द्वारा अपने सच्चिदानन्द आत्मा को नहीं जानता है, वह मूर्ख कभी मुक्त नहीं हो सकेगा ।

हे राम ! पाषाण, स्वर्ण अथवा मिट्टी द्वारा बनाई मूर्तियों की पूजा, मोक्ष की इच्छा करने वालों को निश्चय रूप से पूनर्जन्म लेना पड़ता है । इसलिये जन्म-मरण के चक्र से छूटने की इच्छा वालों का बाह्य पूजा का त्याग कर हृदय स्थित आत्मा का सोऽहम् भाव द्वारा पूजा करनी चाहिये ।

हे राम ! मुमुक्षु साधक के लिये तत्त्व चिन्तन ही सबसे उत्तम साधन है । अन्य चिन्तन अधम श्रेणी का है तथा तीर्थ भ्रमण तो अधमाधम श्रेणी का साधन मूर्ख लोगों के लिये हैं ।

मनुष्य अपने अन्त काल में जिस जिस भाव का स्मरण करता है, अर्थात् जिसको धन-पुत्र, स्त्री आदि के चिन्तन करते प्राण निकल जाते हैं, वह उसी रूप

को प्राप्त करता है । जैसे जड़ भरत हरिन् चिन्तन करते प्राण त्याग देने से हरिण जन्म को प्राप्त हुआ था । अर्थात् वह अपने कल्याण के मार्ग से गिर जाता है ।

हे राम ! सोचो तुम्हारा भी यदि सीता के वियोग में प्राण छूट जाये तो तुम्हारी भी यही गती होगी ।

हे राम ! तुमने जो निश्चय किया है कि मैं अपनी सीता को रावण के साथ युद्ध कर उसे मारकर प्राप्त करुँगा तभी मुझे शान्ति मिलेगी । तो यह तुम्हारा कर्तापन व हिंसात्मक बुद्धि ही तुम्हारे मूढ़ता व बन्धन का कारण है ।

जो ब्रह्मा विष्णु, शिव इन्द्र आदि के एश्वर्य की इच्छा रखकर उपवास, जप, तप, अग्निहोत्र आदि कठिन साधन कर अपने अन्तरात्मा को अत्यन्त दुःख देता है और उग्र राग-द्वैष, हिंसा, दम्भ आदि दुर्गुणों को मन सें रखने वाला जो तप करता है, वह आसुरी स्वाभाव वाला कहा जाता है । हे राम ! तुम्हारी वर्तमान यही दशा है, फिर भी तूम अपनी बात पर दृढ़ हो तो जैसा चाहो वैसा करो । तुमने मेरी भक्ति की है इसलिए मैं तुम्हारी सहायता करने को प्रस्तुत हूँ ।

पंचम अध्याय

भगवान शिवजी ने रामचन्द्र को दिव्य धनुष, अक्षय तर्कस और महापाशुपतअस्त्र प्रदान किया और कहा हे राम ! मेरा उग्र अस्त्र जगत् का नाश करने वाला है, इसका प्रयोग साधारण युद्ध में कभी मत करना,प्रत्युत जब-जब तुम्हारे प्राण संकट में दिखाई पड़े व बचने का कोई रास्ता न हो तभी इसका प्रयोग करना ।

शिवजी ने सभी देवताओं में श्रेष्ठ लोकपालों को बुलाकर कहा कि रामचद्र को सब अपने-अपने अस्त्र प्रदान करो । यह रामचन्द्र उन अस्त्रों से रावण को मारेंगे । कारण कि उस रावण को मैंने वर दिया है कि तू देवताओं से न मरेगा । और तुम सभी देवता बानर रूप धारण करके इनकी सहायता करो । शिवजी की आज्ञा पाकर सभी ने अपने अस्त्र रामचन्द्र को प्रदान कर दिये ।

शिवजी ने कहा - हे राम ! संग्राम में शस्त्र से ही जय प्राप्त होने की सम्भावना है, वहाँ अस्त्रों का प्रयोग न करना और जिनके पास अस्त्र नहीं अथवा जो भाग रहे हों उन पर दिव्यास्त्र का प्रयोग किया तो तुम स्वयं नष्ट हो जाओगे, इस प्रकार विवेक द्वारा सावधानी पूर्वक रावण को मार सीता को प्राप्त कर सकोगे ।

रामचन्द्रने कहा हे प्रभो ! मैं व लक्ष्मण कैसे उसे युद्ध में जीत सकेंगे, वहाँ करोड़ों बली राक्षस रहते हैं, जो वेद पाठ करने में सदा तत्पर, जितेन्द्रिय है और आपके अनन्य भक्त है, वे अनेक प्रकार की माया जानने वाले हैं ।

तब शिवजी ने कहा - वे बलवान राक्षस देवता और ब्राह्मण को दुःख देने में लगे हुए हैं किन्तु अब वे अधर्म में प्रवृत्त हुए हैं ''**विनाश काले विपरित**

बुद्धि'' अतः अब उनका नाश काल आगया है । जो पापी सदा देवता, ब्राह्मण और ऋषियों को दुःख देता है, उसका नाश स्वयं होता है। इसलिये तुम रावण व राक्षसों को मारने में तनिक भी विचार मत करो, वे सब मेरे द्वारा मारे जा चुके हैं, तुम केवल उनके मारने में निमित्त मात्र बन जाओ ।

शिवजी ने कहा – हे रामचन्द्र ! मैं ही एक इस जगत की उत्पत्ति, पालन एवं संहार करता हूँ ।

षष्ठ अध्याय

अपने विराट् रूप का विस्तार पूर्वक वर्णन करते हुए शिवजी ने कहा – हे राम ! प्रलय काल में मेरे सिवा कोई दूसरा स्थित नहीं रहता है । मैं ही तीनों गुणों से परे स्वयं ब्रह्मा, रूद्र स्वरूप सब प्राणियों को अपने में लय करके केवल स्थित रहता हूँ । इस कारण मुझे स्वतंत्र और एक ईश्वर कहते हैं ।

हे राम ! जिस द्रष्टा, साक्षी, आत्मा के द्वारा यह मनुष्य स्वप्न में प्रतीत होने वाले तथा जाग्रत में दिखने वाले दोनों प्रकार के जगत् को देखता है, उस महान और व्यापक आत्मा को मैं रूप से प्रत्यक्ष अनुभव करके बुद्धिमान पुरुष शोक नहीं करता है ।

हे राम ! जब जीव इस बात को जान लेता है कि जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति, मुर्छा, ध्यान, समाधि इन बुद्धि की अवस्था में जो मायिक प्रपंच दिखाई देता है, वह एक भी सत्य नहीं है बल्कि इन आने जाने वाली छःहो अवस्था का जो एक मात्र प्रकाशक है वह सर्व ज्ञाता, सर्व द्रष्टा ब्रह्म 'मैं ही हूँ' तब वह सारे बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

हे राम ! यदि तुम सुख, शान्ति चाहते हो तो ऐसा विचारो कि यह समस्त दृश्यादृश्य प्रपंच मुझ से ही उत्पन्न हुआ है । मुझ में ही सर्व प्रतिष्ठित है और मुझमें ही सबका कालान्तर में लय होता है, मैं ही सर्वाधिष्ठान ब्रह्म हूँ **'नेह नानास्ति किंचन' 'एकमेवाऽद्वितीय ब्रह्म'** यहाँ मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं है । मैं ही एक अद्वितय ब्रह्म हूँ ।

यो वै भूमातत्सुखं नाल्पे सुखमस्ति ।
यो वै भूमातदमृतमथ यदल्पं तन्मर्त्यं ।।

निश्चय ही जो भूमा है, महान है, विभू है, वही सुख रूप है । जो भूमा है, वही अमृत है और जो अल्प है वह सुख रूप नहीं है, जो अल्प है वह मर्त्य है ।

७/२३/१ छा.उप.

जैसे समुद्र में बुलबुले, फेन, भांप, ओले तरंगों में एक मात्र जल ही विद्यमान है, उसी प्रकार मेरे अन्दर ब्रह्मा से लेकर कीट पर्यन्त सब जीव कल्पित है ।

जाग्रत अवस्था का वैश्वानर नाम का आत्मा नेत्र में रहता है, स्वप्न अवस्था का अभिमानी तैजस नाम का आत्मा कंठ में रहता है और सुषुप्ति अवस्था का अभिमानी प्राज्ञ आत्मा ह्रदय में रहता है । इन तीन से पृथक् मैं तुरीय आत्मा चतुर्थ ब्रह्म रन्ध्र में रहता हूँ । जिससे देह, इन्द्रिय, प्राण, मन, बुद्धि सब प्रकाशित होते हैं, जिसका कोई प्रकाशक नहीं, जो सर्व प्रकाशक है, वही मेरा परम गोपनीय स्वरूप है ।

मैं ही श्रुति प्रतिपादित एक देव सर्वत्र, सर्व रूपों में विद्यमान हूँ । मैं ही सर्व प्रथम गर्भ में वास करने वाला, गर्भ से निकलने वाला और पीछे उत्पन्न होने वाला हूँ । सर्वत्र मेरे नेत्र, मुख, भुजा एवं चरण हैं ।

केश के अग्रभाव के समान सूक्ष्म रूप ह्रदय में रहने वाला विश्व व्यापक स्वप्रकाश, श्रेष्ठ आत्म स्वरूप मैं हूँ । जो विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति तथा मुमुक्षुता युक्त हो सद्गुरु द्वारा तत्त्वमसि आदि महावाक्यों का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करता है वही मुक्त होता है, अन्य साधन करने वाले नहीं । जो जीव व ब्रह्म को एकता से देखते हैं अर्थात् एक स्वरूप जानते हैं, वही निरन्तर मोक्ष को प्राप्त होते हैं, दूसरे नहीं ।

हे राम ! सीपी में रजत प्रतीति की भ्रान्ति जिस प्रकार होती है किन्तु रजत् का आधार सीपी यथार्थ है । उसी प्रकार मेरे स्वरूप के अज्ञान से भासने वाला जगत् मिथ्या है, परन्तु इसका आधार मैं सत्य तथा एक रूप हूँ । मैं ही यह पंच भूतात्मक जगत् धारण किये हूँ, इस प्रकार जो मुझे ईश्वर के स्वरूप में जानेगा उसको अनन्त शान्ति अर्थात् मुक्ति की प्राप्ति हो सकेगी, अन्य भेद दर्शियों को कभी नहीं ।

जहाँ वाणी की गति नहीं, जहाँ मन नहीं पहुँचता, इस प्रकार मेरे को ब्रह्म रूप जानने वाले को कहीं से भय की प्राप्ति नहीं होती है ।

यह सब वस्तु मुझ ही से उत्पन्न है, मुझ ही में प्रतिष्ठित है और अन्त में मुझ में ही लय हो जाती है । मैं ही अद्वय ब्रह्म हूँ । इस प्रकार जो मुझे जानते हैं वे ही मुक्त हैं, अन्य नहीं ।

मेरे हस्त-चरण नहीं किन्तु मैं सब कुछ कर सकता हूँ। मेरे नेत्र नहीं तथापि मैं सब कुछ देख सकता हूँ। मेरे कान नहीं फिरभी सब कुछ सुन सकता हूँ। मैं सत्- असत् सभी विचार को जानता हूँ। मेरा एकान्त स्वरूप है, मुझे जानने वाला कोई अन्य नहीं है, मैं सदा चैतन्य हूँ । मैं अशरीरी शक्ति स्वरूप हूँ, मैं व्यक्ति रूप नहीं हूँ ।

मैं पंचभूत रचित देह संघात् में लिप्त नहीं हूँ । मैं पंचकोशात्मक गुहा में रहने वाला निर्विकार, संग रहित, सर्व साक्षी, कार्य कारण भेद शून्य परमात्मा हूँ । जो मुझको इस प्रकार से जानते हैं, वह मेरे शुद्ध परमात्म स्वरूप को प्राप्त होते हैं।

द्वैता द्वैतम भयं भवर्ति मृत्योः समृत्युमाप्नोति यह इह नानेव पश्यन्ति ।।५।।

आत्मवोध उप.

जो मनुष्य इस अद्वय, अखण्ड, सर्व व्यापक ब्रह्म में भेद देखता है कि वह और है, मैं और हूँ ऐसा भ्रान्त धारणा वाला अज्ञानी बारम्बार मृत्यु को प्राप्त होता है ।

हे राम ! जल में जल, दुध में दुध मिल कर एक हो जाते हैं, इसी प्रकार जीव ब्रह्म में मिलकर ब्रह्म हो जाता है, फिर कोई भेद नहीं रहता । जैसे नदी सागर से मिलकर सागर रूप हो जाती है ।

हे रामचन्द्र ! इस प्रकार जो मुझे तत्त्व से अर्थात् निजात्म रूप से जानते हैं, वही ज्ञानी संसार में रहते हुए मुक्त होता हैं, दूसरा कभी नहीं ।

सप्तम अध्याय

हे राम ! जैसे सूक्ष्म वट के बीज में महान् वट वृक्ष सदा रहता है और उचित भूमि व जल पाकर वही वीज वृक्ष रूप में प्रकट हो जाता है । यदि ऐसा न होता वह वृक्ष उस बीज में से कैसे निकल आता ! इसी प्रकार मेरे सूक्ष्म शरीर से सब भूतों का जन्म, पालन और नाश होता है ।

जिस प्रकार जल में डाला हुआ नमक जल में विलीन हो जाने से नमक नहीं दिखाई पड़ता है किन्तु अनुभव से नमक सत्ता को जाना जाता है । इसी प्रकार संसार में परमात्मा व्यापक होते हुए भी इन्द्रिय द्वारा जाना नहीं जाता है किन्तु अनुभव रूप में जाना जाता है । जैसे सूर्योदय से प्रकाश उत्पन्न होता है एवं सन्ध्या समय विलीन हो जाता है, इसी प्रकार मुझसे उत्पन्न होकर जगत् मुझमें विलीन हो जाता है और मुझमें ही स्थिर रहता है, हे राम ! इस प्रकार तुम मुझे कारण-कार्य रूप अखण्ड जानो।

मैं तुम्हें दिव्य दृष्टि देता हूँ, जिससे तुम मेरे गुप्त व्यापक रूप को जान सकोगे । इन चर्म चक्षु द्वारा तुम मुझे नहीं जान सकोगे । तब रामचन्द्र ने भगवान शंकर से प्रार्थना की हे प्रभो ! आप मुझे वह दिव्य दृष्टि शिघ्र प्रदान कीजिये जिसके द्वारा मैं आप की महान् विभूतियों का दर्शन कर सकूँ । रामचन्द्र की प्रार्थना सुनकर शिवजी ने रामचन्द्र को दिव्य चक्षु प्रदान किया और रामचन्द्र को पाताल के समान बड़ा विस्तृत मुख दिखलाया ।

हे राम ! ज्ञान हीन अविचारी पुरुष ही ऐसा मानते हैं कि मैं पूजा, यज्ञ, कवड़ियों के जल, 'बोल बम' आदि बाह्य कर्मों से सन्तुष्ट हो उन्हें इष्ट फल प्रदान

करता हूँ । इसी प्रकार वे अज्ञानी मानते हैं कि किंचित् बेल पत्र वा चुल्लूभर जल प्रीति से जो भक्त चढ़ा देता है, उसे मैं प्रीति पूर्वक स्वीकार करके उस मूर्ख भक्त को स्वराज्य पद दे देता हूँ ।

हे राम ! तुम्हीं इन मूर्खों की बात पर, उनके अन्धविश्वास पर विचार कर देखो की एक वृक्ष के फूल, फल तोड़, उसी वृक्ष को भेंट चढ़ाने में उस भक्त की क्या महानता एवं त्याग है ? जो पत्र, पुष्प, फल, वृक्ष को पहले से प्राप्त थे उन्हें वहाँ से तोड़ उसी पर चढ़ाकर भक्त का केवल मिथ्या अहंकार ही बढ़ता है अन्य कुछ नहीं ।

शिवजी से ज्ञान सुनकर रामचन्द्र ने भगवान शंकर जी से कहा – जिस प्रकार एक सूर्य अनेक जल पात्रों में अनेकसा हुआ दिखता है इसी प्रकार से हे प्रभो ! आप एक होकर भी सबके अन्तःकरण में अनेक रूप से विराजित हो रहे हो ।

अष्टम अध्याय

श्रीरामचन्द्र ने भगवान शिव से पूछा – हे भगवन ! यह शरीर की उत्पत्ति स्थिति तथा नाश किस प्रकार से होता है, इसे मुझे समझाने की कृपा करें ।

भगवान कहते हैं – हे राम ! पंच भूतों से बना शरीर है, इसमें पृथ्वी प्रधान भूत है । जल, तेज, वायु तथा आकाश इसमें मिले हुए हैं ।

जरायुज, अंडज, स्वेदज तथा उद्भिज्ज यह पांच भौतिक देह के चार भेद हैं । इन में जरायुज शरीर प्रधान है, उनमें भी मानव शरीर विशेष है ।

खाये–पीये अन्न जल के ४० दिन में पुरुषों में वीर्य तथा स्त्री में रज निर्मित होता है । स्त्री के मासिक श्राव के बाद स्नान द्वारा शुद्ध होने पर उसके मन में काम भाव जाग्रत होता है, तब चौथे दिन से सौलह रात्रि काल की अवधि गर्भाधान की मानी जाती है । इन रात्रियों में भी पांचवे, सातवे, नवे, ग्यारहवे, तेरहवे, पन्द्रवे दिन में सम्भोग करने से लड़की का जन्म एवं छह, आठ, दस, बारह, चौदह, सौलहवें दिन मैथुन से लड़के का जन्म होता है ।

ऋतुकाल के बाद स्त्री कामातुर हो जिस पुरुष का मुख देखती है, उसी आकृतिका गर्भ होता है । सौलहवी रात्रि का गर्भ महान विद्वान, राजा संतादि होता है ।

यः स्तनः पूर्व पीतस्तं निष्पीड्य मुदमश्नुते ।
यस्माज्जातो भगात्पूर्व तस्मिनेव भगे रमन ।। १३१

या माता स पुनः र्भार्या या भार्या मातरेव हि ।
यः पिता स पुनः पुत्रोयः पुत्रः सपुनः पिता ।। १३२

एवं संसार चक्रेण कूप चक्र घटा इव । १३३ योगतत्त्वोपनिषद्

इस प्रकार यह जीव नाना योनियों में भ्रमण करता हुआ मनुष्य योनि में आता है । एक समय यह जीव जिस स्तन का पान कर बड़ा होता है फिर दूसरी अवस्था में बड़ा होकर वैसे ही स्तन को दबा कर, चूसकर प्रसन्नता का अनुभव करता है ।

जिस योनि द्वार से जन्म लेता है बड़ा होकर वैसे ही योनि में रमण करता है ।

एक जन्म में जो माता होती है वह अन्य जन्म में भार्या हो जाती है । जो इस जन्म में भार्या होती है व माता बनकर जन्म दायी हो जाती है । जो पिता होता है, वह अगले जन्म में पुत्र हो जाता है और फिर पुत्र पिता के रूप में जन्म ग्रहण करता है ।

इस प्रकार यह संसार चक्र कूप चक्र (पानी खींचने का रेहट माला) के समान है, जिसमें प्राणी विभिन्न योनियों में आवागमन करता रहता है ।

हे राम ! तीन मास में शिर, हाथ आदि उत्पन्न होते हैं और जीव का आश्रय लिंग देह चौथे महीने में उत्पन्न होता है । पुत्र माता के दक्षिण पार्श्व और कन्या वाम पार्श्व में स्थित होती है । पुरुष के वीर्य की अधिकता से पुत्र व स्त्री के रज के प्रबलता से कन्या का शरीर उत्पन्न होता है । स्त्री तथा पुरुष के रज वीर्य की समानता से नपुंसक संतान उत्पन्न होती है ।

गर्भकाल में गर्भस्त स्त्री जिस पदार्थ को खाने की इच्छा करती है, उसके द्वारा वह पदार्थ खाने से गर्भस्थ बालक भी बड़ा होने पर वही पदार्थ खाने की इच्छा करता है । गर्भकाल में माता की इच्छा पूर्ण न करने से गर्भस्थ सन्तान में निर्बलता, बुद्धिहीनता दोष हो जाते हैं । अतः गर्भवती की इच्छा अवश्य पूर्ण करें । यदि वह मांस, मछली, अंडा आदि तमोगुणी निषिद्ध वस्तु की इच्छा करे तो उसे कभी न दे ।

हे राम ! गर्भ में कीड़े काटते हैं तो तीक्ष्ण कांटे की तरह दर्दनाक लगते है एवं गर्म बालूरेत पर जैसे किसी को डाल दिया हो ऐसी वेदना उस गर्भस्थ शिशु को होती है । तब यह अपने पिछले अनेक जन्मों के कर्मों का एवं सम्बन्धी जनों का

ध्यान करता है एवं मुक्त होने के लिये परमात्मा से याचना करता है । गर्भ शय्या में जो दुःख होता है वह कुम्भीपाक नरक में भी नहीं होता ऐसा महान कष्ट दायक अवस्था से जीव को गुजरना पड़ता है । जीवन में गरीबी, रोग, अन्धता, बधिरता, विकलांगता के दुःख का तो कहना ही क्या ! इस प्रकार संचित कर्मानुसार जीव को शरीर धारण करना पड़ता है एवं अपने पिछले कर्मों के फल भोग तथा आगामी जन्मों के लिये नूतन कर्म करता है । सभी जीव बचपन, यूवा तथा वृद्धावस्था का दुःख भोग मरते देखे जाते हैं । कोई भाग्यशाली ज्ञान प्राप्त कर सदा के लिये जन्म-मरण के चक्र से मुक्त हो जाता है ।

'जन्मत मरत दुःसह दुःख होहि ।'

मावन जीवन पाकर यदि इस जीव ने ज्ञान प्राप्त नहीं किया तो फिर इस जीव को नीच योनि में जाना पड़ता है ।

तमेव विदित्वाति मृत्युमेति नान्यः पन्था विद्यते ऽयनाय ।

आत्मा को जाने बिना दुःख के सागर से पार होने के लिये कोई अन्य मार्ग नहीं है ।

नवम अध्याय

भगवान बोले – हे राम ! तुम सावधान मन से सुनो । यह शरीर पंच भूतों का कार्य है । इसमें सत, रज तथा तम गुण है ।

इसमें स्थूल शरीर पच्चीस तत्त्वों का निर्मित हुआ है जो निम्न कोष्टक द्वारा स्पष्ट बोध हो जाता है कि किस भूत के क्या गुण, क्रिया हमारे शरीर में होते हैं ।

स्थूल शरीर पच्चीस तत्व

पंचीकृत पंचभूत	आकाश	वायु	तेज	जल	पृथ्वी
आकाश	शोक	प्रसारण	निद्रा	लार	केश
वायु	काम	धावन	तृषा	स्वेद	त्वचा
तेज	क्रोध	वलन	क्षुधा	मूत्र	नाड़ी
जल	मोह	चलन	कान्ति	रजवीर्य	मांस
पृथ्वी	भय	आकुंचन	आलस्य	रक्त	हाड़

इस स्थूल शरीर को धारण करने वाला सूक्ष्म शरीर है । उसके गुण कर्म विभाग को निम्न कोष्टक से दर्शाया गया है । इसमें अपंचीकृत पंच भूतों के मिलित व स्वतन्त्रता से अन्तःकरण व ज्ञानेन्द्रिय, रजोगुण के मिलित व स्वतन्त्रता से पंचप्राण व पंच कर्मेन्द्रिय निर्मित हुए है ।

सूक्ष्म शरीर

अपंचीकृत सूक्ष्म पंचभूत	सत्त्वगुण		रजोगुण		तमोगुण
	मिलित वृत्ति	स्वतन्त्र ज्ञानेन्द्रिय	मिलित प्राण	स्वतन्त्र कर्मेन्द्रिय	विषय
आकाश	अन्तःकरण	श्रोत्र	व्यान	वाक्	शब्द
वायु	मन	त्वचा	समान	पाणि	स्पर्श
तेज	बुद्धि	चक्षु	उदान	पाद	रूप
जल	चित्त	जिह्वा	प्राण	लिंग	रस
पृथ्वी	अहंकार	घ्राण	अपान	गुदा	गंध

हे राम ! सात्विक गुण से आस्तिक्य बुद्धि, स्वच्छता, धर्म में रुचि, दया, प्रेमादि उत्पन्न होते हैं ।

रजोगुण से चंचलता, काम, क्रोध, मद, ईर्षा आदि उत्पन्न होते हैं । तमोगुण से निद्रा, आलस्य, प्रमाद एवं दुष्ट प्रवृत्तियाँ होती है ।

हे राम ! खाये-पीये अन्न जल तेज के भी तीन भेद हो जाते हैं । अन्न के स्थूल भाग से मल, मध्य भाग से मांस और सूक्ष्म भाग से मन होता है । जल के स्थूल भाग से मूत्र, मध्य भाग से रक्त तथा सूक्ष्म भाग से प्राण होता है, इसलिये जलमय प्राण कहा जाता है ।

तेज के सूक्ष्म भाग से वाणी, मध्यभाग से मज्जा तथा स्थूल भाग से हाड़ निर्मित होते है ।

इस शरीर में २१० अस्थियों की सन्धि ३०८ अस्थियाँ है, साढे तीन करोड़ रोम तथा तीन लाख दाड़ी के बाल है, जो सब पृथ्वी का कार्य है एवं मृत्यु पर पृथ्वी का ही भोजन हो जाता है ।

दुःख की बात है यह समस्त जीव इस देह को प्राप्त कर देह का ही अभिमान कर पुनः बन्धन में पड़ता है किन्तु बन्धन से छूटने का अर्थात् मोक्ष प्राप्ति का उपाय नहीं करते हैं ।

दशम अध्याय

शिवजी ने कहा – हे रामचन्द्र ! जो गुप्त से गुप्त बात है जिसे देव, ऋषि भी नहीं जानते हैं, वह मैं तुमसे कहता हूँ ।

हे राम ! निरंतर ध्यानपूर्वक उस परमेश्वर को मैं रूप जानने वाले ज्ञानी के सर्व बन्धन कट जाते हैं । सब कल्याण चाहनेवाले साधको, भक्तों, योगियों को अपने अन्तर में निवास करने वाले ब्रह्म का ही ज्ञान करना चाहिये इससे अधिक ज्ञातव्य कुछ नहीं है ।

जैसे तिलों में तेल, दुध में घृत, काष्ठ में अग्नि, जल में लवण, स्रोतों में जल अदृश्य रूप से रहता है, वैसे ही सभी प्राणियों के हृदय में परमेश्वर अदृश्य रूप से विद्यमान रहता है । जो इस प्रकार परमात्मा के व्यापक रूप को जानता है, ऐसा साधक 'मैं ब्रह्म हूँ,' इस निष्ठा को सरलता से प्राप्त कर धन्य हो जाता है ।

हे राम ! यह शरीर अविनाशी और अशरीरी आत्मा का निवास स्थान है । यह शरीर जन्म–मरण धर्मवाला, एकदेशीय, परिच्छिन्न, जड़, अनात्मा तथा नश्वर स्वभाव का है जो सदैव मृत्यु से घिरा रहता है । शरीर रहते हुए इसमें प्रिय अप्रिय, सुख–दुःख का अन्त नहीं हो सकता । पर जब जीव देह भाव का त्याग कर देता है तो फिर इसे प्रिय–अप्रिय स्पर्श नहीं कर पाते हैं ।

यह जीव शरीर भाव से उठकर परम ज्योति ब्रह्म को पाकर अपने स्वरूप को पा जाता है । यह उत्तम पुरुष होता है । यह ज्ञानी पुरुष सर्वत्र गमन करता हुआ, हंसता हुआ, स्त्रियों के साथ रमण करता हुआ, हाथी, घोड़ा,रथ, कार, रेल, हवाई जहाज पर बैठता है, बन्धुओं के साथ क्रीड़ा करता हुआ भ्रमण करता है । किंतु

वह इस देहभाव को कभी स्मरण नहीं करता है । अज्ञानी की तरह उसको पुनः इस मृत्युलोक में लौट आना नहीं पड़ता है । घट नष्ट होते ही वह वहीं महाकाश रूप रह जाता है । इस प्रकार इस ज्ञानी के देहान्त होने पर वह ब्रह्मरूप ही रह जाता है ।
छान्दोग्य उप. ८.१५.१

हे राम ! जो पुरुष सम्पूर्ण भूतों में सबके आत्मरूप मुझ वासुदेव को ही व्यापक देखता है और सम्पूर्ण भूतों को मुझ वासुदेव के अन्तर्गत देखता है, उसके लिये मैं अदृश्य नहीं होता हूँ और वह मेरे लिये अदृश्य नहीं होता है । क्योंकि वह ज्ञानी भक्त और मैं दो तत्त्व नहीं है इसलिये अपने आपसे कोई भी कभी अदृश्य नहीं होता है ।

मैं ही सत्य स्वरूप, ज्ञान स्वरूप, अनन्त परमानन्द परमात्मा परम ज्योति हूँ । माया से मोहित जीवों को न दिखने वाला, केवल अधिकारियों को ज्ञान चक्षु से अनुभव स्वरूप हूँ । मैं ही संसार का कर्ता नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त सचराचर का आत्मा, सर्वान्तर्यामी निःसंग, निष्क्रिय सब धर्मों से परे, मन-बुद्धि से परे सर्वका प्रकाशक ज्ञान स्वरूप हूँ ।

मुझे किसी इन्द्रिय द्वारा ग्रहण नहीं किया जा सकता, मैं समस्त इन्द्रियाँ एवं उनके तीव्रता, मन्दता तथा अन्धता स्वभाव को जानने वाला साक्षी, द्रष्टा, आत्मा हूँ । मैं सम्पूर्ण लोकों का ज्ञाता हूँ किन्तु मुझे कोई नहीं जानता है । मुझमें देह के जन्म से मृत्यु तक के षड् विकार तथा जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्था भेद भी नहीं है । मैं सम्पूर्ण विकारों से रहित असंग, निष्क्रिय आत्मा हूँ ।

हे राम ! जहाँ मन व वाणी जाकर लौट आती है उस आनन्द ब्रह्म को अर्थात् मुझको प्राप्त होकर यह प्राणी फिर कहीं से व किसी से भी भय को प्राप्त नहीं होता है । जो सम्पूर्ण प्राणियों में मुझको व मुझमें समस्त प्राणियों को देखता है वह समस्त दोषों एवं पापों से मुक्त हो जाता है । वह शोक, मोह एवं जन्म-मृत्यु भय से रहित हो जाता है ।

हे राम ! मुझ चैतन्य परमात्मा का ही अन्तःकरण पर प्रतिविम्ब पड़ने से उसे जीव कहते हैं, क्षेत्रज्ञ व पुरुष भी इसे कहा जाता है ।

दर्पण के दोष से मुख भी मलिन दिखाई पड़ता है, इसी प्रकार अन्तःकरण के दोषों से आत्मा भी विकारी दीखता है ।

हे राम ! विचारों कि तुम्हें कौन दुःखी करता है ? कौन बान्धता है ? तुम्हारे देहाभिमान के अतिरिक्त कोई तुम्हें दुःखी नहीं करता है । तुम्हारी बुद्धि ही तुम्हें स्त्री, पुत्र, धन, सम्पत्ति के लिये दरिद्र व भिखारी बना रही है । अन्यथा ''मैं आत्मा हूँ'' इस निष्ठा के समान कौन एश्वर्यवान हो सकता है ? अर्थात् कोई नहीं ।

हे राम ! वे धन्य है जो इस वेदान्त सार ब्रह्म ज्ञान उपदेश को सद्गुरु द्वारा सुनते हैं और भली प्रकार से संशय रहित समझ लेते है । वे बड़े भाग्यशाली हैं, जिन्हें यह सदा के लिये जन्म-मरण से छुड़ानेवाला ज्ञान, श्रवण, मनन, ध्यान का अधिकार प्राप्त हो गया है, जिन्हें यह परम पवित्र ब्रह्म ज्ञान श्रवण की इच्छा जाग्रत हुई है एवं सुनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है । लीला कथा, जीवन चरित्र, हार-जीत, लाभ-हानि, मित्र-शत्रु, जन्मने-मरने वाले की कथा तो सब सुनाते हैं पर उस अलख पुरुष की चर्च्चा करने वाले एवं अकथ की कथा सुनाने वाले, अलख को लखा देने वाले, अप्रमेय का अनुभव करादेने वाले और आप जैसे सुनने वाले दोनों बधाई के पात्र हैं । **(गीता २/१९)**

भगवान श्रीकृष्ण कहते हैं - जिस अध्यात्म ज्ञान के द्वारा अर्थात् आत्मा एवं अनात्म के विवेक द्वारा , यह शरीर क्षेत्र तथा आत्म वस्तु क्षेत्रज्ञ का स्पष्ट बोध होता है । यही मेरे मत से ज्ञान है, शेष सब अज्ञान की ही चर्चा कथा होती है। क्षेत्र-क्षेत्रज्ञ का बोध कराने वाले ही सच्चे तत्त्वदर्शी महात्मा हैं जो नाम, रूप, लीला कथा से साधक को निकाल कर नाम, रूप ,लीला के प्रकाशक परब्रह्म का बोध कराते हैं । **गीता १३/२,२१, ७/२५**

अन्तःकरण और जीव इन दोनों की एकता अर्थात् परस्पर अध्यास के कारण और एकभाव का अभिमान करने से परमात्मा भी दुःखी-सा दिखाई पड़ता है । वास्तव में सुख-दुःख धर्म अन्तःकरण में है, जीव में नहीं है । परन्तु जिस प्रकार चन्द्रमा का प्रतिबिम्ब जल पात्र में पड़ने से जल के चलायमान होने से स्थिर चन्द्रमा भी चलायमान प्रतीत होता है । इसी प्रकार अन्तःकरण के सुखी दुःखी होने से अपने

धर्म जीव अपने में अरोपित करलेता है, इसी कारण जीव सुख -दुःख का साक्षात्कार करता है ।

यह हमारा आत्मा निर्लेप है । परन्तु मूढ बुद्धि वालों को अविद्या दोष के कारण अपने स्वरूप का यथार्थ बोध नहीं होता है । इसलिये उन्हें अपने में कर्ता-भोक्ता की भ्रान्ति बनि रहती है ।

बाल के अग्रभाग का सौवां भागकर फिर उसका भी सौवां भाग करके जो अंश रहता है, वैसी सूक्ष्म से सूक्ष्मावस्था जीव की जाननी चाहिये । वस्तुतः तो ब्रह्म से पृथक जीव के स्वरूप का कोई प्रमाण नहीं है कि जीव ऐसा है और इतना है । यह जीव शरीर में अभिमान कर मैं मनुष्य हूँ, मैं स्त्री हूँ, मैं ब्राह्मणादि हूँ ऐसा मिथ्या अभिमान कर इस मांस पिण्ड में स्थित रहता हुआ बन्धन को प्राप्त होता है।

हे राम ! जिस प्रकार घट के लाने, ले जाने से घट में स्थित अचल, व्यापक आकाश में आना-जाना, छोटा-बड़ा, तेढ़ा-मेढ़ापन व बनना-बिगड़ना रूप विकार नहीं होता है फिर भी अज्ञानी आकाश का लाना, ले जाना बनना-बिगड़ना, छोटा-बड़ा होना मानता है । इसी प्रकार सर्वत्र व्यापक चेतन स्थूल व सूक्ष्म देह में प्रतिविम्बत होने के कारण जन्म-मृत्यु, सुखी-दुःखी, पापी-पुण्यात्मा, बद्ध-मोक्ष मान लिया जाता है । अन्तःकरण वृत्ति से व्याप्त होकर चंचल दीखता है । सम्पूर्ण वृत्तियाँ सूक्ष्म शरीर से उठती है और जब तक आत्मज्ञान नहीं होता, तब तक लिंग शरीर का नाश नहीं होता है ।

हे राम ! सावधान मन से मेरी बातों का श्रवण करो । जिस समय यह जीव किसी श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ ज्ञानी गुरु के उपदेश से तत्त्वमसि महावाक्य द्वारा अपने व ब्रह्म के बीच मानी गई भेद भ्रान्ति से मुक्त हो जाता है, तब इस के सूक्ष्म शरीर का भी नाश हो जाता है । उस समय केवल आत्मा का अनुभव मात्र 'अहं ब्रह्मास्मि' इस स्वरूप में स्थिर होने से ही जीव मुक्त हो जाता है ।

जिस प्रकार घट के उत्पन्न होते ही उसमें घटाकाश प्राप्त हो जाता है और घट के नष्ट होते ही घटाकाश अपने मूल रूप महाकाश ही रह जाता है । इसी प्रकार अविद्या उपाधि से यह चैतन्य जीव रूप कहा जाता है । अविद्या अज्ञान का नाश होते ही यह जीव अपने मूल स्वरूप ब्रह्म में ही स्थिति प्राप्त कर लेता है ।

जैसे तैल में तैल, पानी में पानी, दूध में मिलकर दूध एक ही हो जाता है इसी तरह आत्मज्ञानी पुरुष देह उपाधि छोड़ते ही आत्मा ही रह जाता है । केवल शरीर के कारण ब्रह्म से भिन्न प्रतीत होता है ।

जिस प्रकार से एक सूर्य जल, दर्पण, मणि आदि स्थानों में प्रतिबिम्बित होने से अनेक प्रतीत होता है । इसी प्रकार एक ही कूटस्थ आत्मा अनेक देहों में प्रतिबिम्बित होने से अनेक आत्मा एवं कर्ता भोक्ता, गमनागमन रूप दिखता है ।

हे राम ! ज्ञानी अपने स्वरूप को जान कर कृत-कृत्य हो जाता है, तो भी लोगों पर अनुग्रह करने की इच्छा से शास्त्र-मर्यादानुसार चलता है, तो इसमें उसकी कोई उन्नति अथवा हानि नहीं है ।

ज्ञानी का मन स्नान, देव पूजा, भिक्षा आदि में भले ही प्रवृत्ति करे, वाणी ॐ का या किसी मंत्र का जप करे या उपनिषदों को स्वाध्याय करे । बुद्धि भले ही राम, कृष्ण, शिव आदि देवों का ध्यान करे अथवा समाधि में लगे । यह मन विकार वाला है तो वह भले ही विक्षेप का दूर करने का कोई साधन करे एवं ब्रह्मानन्द में लीन रहे, मैं तो नित्य अनुभव रूप हूँ, मैं तो नित्य निर्विकल्प समाधि में ही स्थित हूँ फिर साधन साध्य समाधि में मुझे और क्या विशेष लाभ या अनुभव हो सकेगी ?

मैं कृत-कृत्य होने से तृप्त हूँ । जो प्राप्त करना था, उसे प्राप्त कर लिया, जिसे जानना था उसे मैंने बिना कष्ट के अनायास ही जान लिया इसलिये मैं धन्य हूँ धन्य हूँ, मुझे धन्य है, धन्य हैं । क्योंकि मैं ब्रह्मानन्द स्वरूप हूँ, अज्ञान, दुःख-बन्धन मुझे स्पर्श नहीं कर सकता । मुझे धन्य है, मैं धन्य हूँ कि जो कुछ प्राप्त करना है वह मैंने यही प्राप्त करलिया । मैं धन्य हूँ, धन्य हूँ, मैं बारम्बार धन्य हूँ । अहो पुण्य ! अहो पुण्य ! अहो अहम् ! अहो अहम् ! अहो ज्ञान ! अहो गुरु ! अहो गुरु ! अहो आनन्द ! अहो आनन्द ! **अवधूत उप. ३०-३५**

हे राम ! ज्ञानी का प्रारब्धानुसार कहीं भी और कैसे भी देह त्याग हो जावे वह ब्रह्म में ही स्थित हो जाता है । जैसे घट नष्ट हो जाने पर घटाकाश आकाश रूप ही हो जाता है । जैसे आकाश सर्वत्र है, वैसे ही ब्रह्म भी सर्वत्र है । जैसे घट स्थित आकाश महाकाश में ही समाया रहता है । इसी प्रकार देह स्थित जीवात्मा सदा

ब्रह्म में ही समाया रहता है । जिस प्रकार नेत्रों को सर्व प्रथम आकाश एवं प्रकाश दिखाई पड़ता है इसके बाद वह अन्य नाम, रूप मिथ्या पदार्थ को देखता है । इसी तरह ज्ञानी को सभी रूपों में सर्व प्रथम कारण रूप एक अखण्ड परमात्मा ही प्रतीत होता है बाद में वह कार्य रूप जगत को देखता है ।

यह विज्ञान सहित ज्ञान सब विद्याओं का राजा, सब गोपनीयों का राजा, अति पवित्र, अति उत्तम, प्रत्यक्ष अविनाशी फल वाला, धर्मयुद्ध, साधन करने में बड़ा सुगम है ।

इस आत्म धर्म में श्रद्धा रहित पुरुष अमृत को न प्राप्त होकर मृत्यु रूप संसार चक्र में भ्रमण करते रहते हैं ।

हे राम ! इस ज्ञान को आश्रय करके अर्थात् 'मैं ब्रह्म ही हूँ' ऐसा जानकर वह ब्रह्म रूप ही हो जाता है । "**ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति**" फिर उस ब्रह्मदर्शी महात्मा को इस सृष्टि के आदि में पुनः उत्पन्न नहीं होना पड़ता है और देहान्त के समय भी वह अज्ञानियों की तरह व्याकुल एवं भयभीत नहीं होता है ।

अतः हे राम ! उठो जागो ! कब तक इस अविद्या कल्पित सीता वियोग में जो तुम्हारे अनर्थो की बीज भूत है, उसके लिये शोक सन्ताप में मुर्च्छित पड़े रहोगे । अतः अति शिघ्र किसी श्रेष्ठ महापुरुष की शरण ग्रहण कर उस परमात्म तत्त्व को मैं रूप में अच्छि प्रकार जानलो ।

मोक्षाभिलाषी के लिये यह वेदाज्ञा है कि वह कर्म, उपासना से उपराम होकर गुरु द्वार की ओर हाथ में आश्रम उपयोगी सामग्री लेकर श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के पास जावे, क्योंकि इन कर्म, उपासना अनित्य साधनों के द्वारा नित्य पदार्थ रूप मोक्ष प्राप्त नहीं हो सकता । **१/२/१२ मुण्डक उप.**

एकादश अध्याय

शिवजी ने कहा – हे राम ! ज्ञान के आनन्द से अधिक आनन्द तो देवलोक में भी नहीं है, कारण कि ज्ञानी को किसी वस्तु की कामना नहीं है, न किसी प्रकार का भय होता है । संसार के आनन्द से ब्रह्मलोक तक के आनन्द आत्मज्ञान की बराबर नहीं है, इसलिए प्रत्येक मनुष्य को आत्मज्ञान का अनुष्ठान करना आवश्यक है ।

हे राम ! जो ब्रह्मवेत्ता है, उसे वेदोक्त कर्म–उपासना करने से कुछ प्रयोजन नहीं है । न उसकी कर्म करने से वृद्धि होती है और न उसकी कर्म न करने से हानि होती है । शास्त्र में विहित कर्मों का विधान और निषिद्ध कर्मों का जो निषेध किया गया है, वह अज्ञानियों एवं देहाभिमानियों के लिये किया गया है । जिन्हें आत्मज्ञान हो जाता है, उनके द्वारा निषिद्ध कर्म तो होते ही नहीं और यदि ज्ञानी लोक कल्याणार्थ कर्म, उपासना करे तो भी उसकी कोई उन्नति या हानि नहीं है । इस कारण से ज्ञानवान् ब्राह्मण सबसे श्रेष्ठ है, जो कोई पुण्यवान् ज्ञानी जान कर कर्म करता है उसका पुण्य का फल अक्षय होता है ।

जिस फल को दानी मनुष्य करोड़ ब्राह्मण के भोजन कराने से प्राप्त होता है, वह फल एक ज्ञानी महापुरुष के भोजन कराने से प्राप्त हो जाता है । जो वस्तु ज्ञानी जनों को दी जाती है वह करोड़ गुना मिलती है । क्योंकि उसके द्वारा दान वस्तु का सदुपयोग होता है ।

हे राम ! जो मनुष्यों में अधम ज्ञानी महापुरुष की निन्दा करता है, वह क्षय रोग से पीड़ित होकर मृत हो जाता है, क्योंकि ज्ञानी साक्षात् ईश्वर है ।

द्वादश अध्याय

हे रामचन्द्र ! जो निर्गुण रूप को कठिन मानते हैं, वे भक्त मेरे सगुण रूप की उपासना करें, किसी भी सगुण या निर्गुण रूप की उपासना करने वाले की अधोगति नहीं होती है ।

शिवजी ने कहा – हे राम ! जितने देवता हैं, यह सब मेरे ही रूप हैं, वास्तव में मुझ से भिन्न कोई नहीं है । अतः जो दूसरे देवताओं की उपासना करते हैं, श्रद्धा पूर्वक पूजन करते हैं, वे पुरुष भेद बुद्धि से मेरा ही यजन करने वाले हैं क्योंकि सम्पूर्ण संसार मेरे सिवाय और कुछ नहीं है, इसीसे मैं ही सब क्रिया का भोक्ता और सबका फल देने वाला हूँ किन्तु उनका यह भेद उपासना अविधि पूर्वक है ।

जो पुरुष विष्णु, शिव, गणेशादि जिस भावसे मेरी उपासना करते हैं उसी भावना के अनुसार उसी देवता के रूप में मैं ही उन्हें वांछित फल देता हूँ । विधि अथवा अविधि पूर्वक किसी प्रकार से जो मेरी उपासना करता है, उनको मैं प्रसन्न होकर फल देता हूँ, इसमें कोई सन्देह नहीं ।

यदि दुराचारी भी अनन्य होकर मेरा भजन करता है तो उस पुरुष को साधु ही मानना चाहिये । पर यह निश्चय जानना चाहिये कि मेरा अनन्य भक्त हो जाने पर फिर वह मुझसे श्रेष्ठ अन्य कुछ नहीं जानता है, न अपेक्षा करता है, इसलिये वह कभी दुराचारी नहीं हो सकता ।

जो एक निष्ठ बुद्धि होकर सोऽहम् रूप से भजन करता है उसको पुण्य–पाप स्पर्श नहीं करते हैं । यहाँ तक की प्रारब्धवश ब्रह्महत्या हो जावे तो भी पाप

स्पर्श नहीं करता है ।

हे राम ! जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति इन तीनों अवस्था का प्रपंच जिस साक्षी रूप अधिष्ठान आत्मा के द्वारा प्रकाशित होता है, वह ब्रह्म मैं हूँ ऐसा यथार्थ जानने से यह जीव सम्पूर्ण बन्धनों से मुक्त हो जाता है ।

एकही परमात्मा सम्पूर्ण भूतों में विद्यमान, सर्वव्यापि और सब भूतों का अन्तरात्मा है । जो सबका अध्यक्ष और सब भूतों में निवास करने वाला साक्षी चित्त को प्रेरणा करनेवाला निर्गुण और निर्लेप 'मैं' हूँ, इस प्रकार जो जानता है, वह मुक्त होता है । सब भूतों का आत्मा वह एकही देव है, वह देव पुरुष मैं आत्मा ही हूँ उन्हीं को कैवल्य मुक्ति होती है, दूसरों की नहीं जो अखण्ड व अविनाशी में भेद देखते हैं।

जिस प्रकार एक ही अग्नि या जल भिन्न-भिन्न काष्ठ या पात्र में भिन्न-भिन्न आकार में प्रकट होते हैं, फैलते हैं, इसी तरह सबका अन्तरात्मा एक ही है और शरीरों के आकार रूप में प्रतीत होता है ।

जो विद्वान ज्ञानी मुझको सर्वान्तर्यामी, महान् व्यापक स्वप्रकाश, माया से रहित आत्म स्वरूप जानता है, वही संसार बन्धन से मुक्त होता है ।

सृष्टि के आरम्भ में मैं ही ब्रह्मा रूप हुआ तथा उसको निमित्त बना मैंने ही उसे वेद का उपदेश किया वह स्तुति योग्य पुराण पुरुष मैं हूँ जो इस निश्चय से मुझे जानते हैं, वे मृत्यु के बन्धन से छूट जाते है ।

: सिद्धान्त सूत्र :

कर्म करने से जीव बन्धन को प्राप्त होता है और ज्ञान से मुक्त होता है । अतः आत्मानुभूति करने वाले ज्ञानी को कर्म नहीं करना चाहिये ।

संन्यास उप २/१८

यह मेरा है इस प्रकार के निश्चय से जीव को बन्धन है तथा यह मेरा नहीं इस दृढ़ निश्चय से ही जीवमुक्त हो जाता है । **महो. उप. ४/२०**

मैं ब्रह्म को नहीं जानता जो, इस प्रकार जानता है, वह अज्ञानी मुक्त नहीं हो सकता । ४/२३ **पैङ्गल.उप.**

अविचार कृतो बन्धो विचारान्मोक्षोभवति तस्मात्सदा विचारयेत् ।

अविचार से ही बन्धन होता है एवं विचार द्वारा ही बन्धन से मुक्ति होती है । अतः सदा मैं ब्रह्म हूँ इस प्रकार विचार करना चाहिये । क्योंकि मति के अनुसार ही गति होती है ।

जैसे घड़े को प्रकाशित करने वाला सूर्य घट नाश होने से प्रकाशक सूर्य का नाश नहीं होता । इसी प्रकार देह का प्रकाशक साक्षी आत्मा देह नाश होने से भी नाश को प्राप्त नहीं होता ।

जो इस मांस, मज्जा, मल, मूत्र, रज, वीर्य अधम धातु से बने शरीर में प्रेम करता है, तो वह नरक को ही अर्थात् अतिशय दुःख को ही प्राप्त करेगा । इसमें किंचित् सन्देह नहीं है ।

आँखों पर हरा, लाल, पीला, नीला, रंग का चश्मा होने से सभी दृश्य शीशे के रंग जैसे भासते है । इसी तरह अपनी दृष्टि को किसी गुरु आपटेशियन द्वारा ज्ञानमयी बनाले और सारे जगत् को ब्रह्ममय देखें ।

ब्रह्म कथा करने में, ग्रन्थ रचना करने में, भजन बनाने में, उपदेश करने में तो बड़े कुशल है, मगर ब्रह्माकार वृत्ति तो बनती नहीं और संसार के विषयों मे राग भी है । ऐसे वाचिक ज्ञानी अज्ञानी ही है, उनका आवागमन का बन्धन छूट नहीं सकता ।

सच्चे ज्ञानी ब्रह्माकार वृत्ति के बिना एक क्षण भी नहीं रहते, क्योंकि ब्रह्मनिष्ठा में प्रमाद ही मृत्यु है, ऐसा तत्त्वज्ञानियों का कहना है ।

'मैं देह नहीं हूँ' फिर मुझे जन्म-मरण कहाँ से हो ? मैं प्राण नहीं हूँ तो फिर मुझे भूख-प्यास कैसे लगे ? मैं मन नहीं हूँ, तो मुझे शोक मोह कैसे हो सकते है ? मैं कर्ता जीव नहीं हूँ तो बन्ध मोक्ष भी मुझ में कहा हो सकते हैं ?

उस परमतत्त्व को धन, पुत्र, सम्पत्ति अथवा कर्म, तप हठयोगादि साधनों द्वारा प्राप्त नहीं किया जा सकता । उसके लिये तो अनात्म देह संघात् से अपने देहाध्यास का त्याग ही एक मात्र उपाय है ।

यह मन ही बन्धन व मोक्ष का कारण है । जो मन देह संघात् एवं उसके विषयों में बन्धा है, वही बद्ध है और जिसे देहाभिमान नहीं विषयों में आसक्ति नहीं वह सदा मुक्त है ।

जब मनुष्यों में इतना सामर्थ्य हो जाय कि वे आकाश को चर्म के समान लपेट लेंगे, तब ही वे परमात्मा को बिना जाने समस्त दुःखों से सदा के लिये मुक्त हो सकेंगे । अर्थात् बिना ज्ञान के मुक्ति की प्राप्ति कभी नहीं हो सकती ।

त्रयोदश अध्याय (मुमुक्षु गीता)

सूतजी शौनकादिकों को कह रहे है कि रघुनाथजी इसप्रकार भक्ति का वर्णन श्रवण करके उन्होंने भगवान शिवजी से प्रश्न किया कि हे कृपासागर भगवन ! आप मुझ पर प्रसन्न होकर मुक्तिका स्वरूप और लक्षण वर्णन कीजिये ।

श्री भोलेनाथ बोले, हे राम ! सालोक्य, सारूप्य, साष्टर्य, सायुज्य और कैवल्य मुक्ति यह पांच भेद वाली है ।

जो कामना रहित, अज्ञान रहित हो मेरी मूर्ति रूप में पूजन करते हैं वह मेरे लोक को प्राप्त होकर अनेक प्रकार के इच्छित भोग पदार्थ भोगते हैं, वह सालोक्य मुक्ति कहलाती है ।

जो मेरा स्वरूप जानकर निष्काम बुद्धि से मेरा भजन करता है, इसे सारूप्य मुक्ति कहते हैं ।

जो कर्ता भोजन करता है और जो अग्नि में हवन करता है, वह जो तपस्यादि करता है, वह सब मेरे ही अर्पण करता है वह मेरे लोक की सब भोग सामग्री को भोगता है, इसे साष्टर्य मुक्ति कहते हैं ।

जो श्रवण, मनन, निदिध्यासन पूर्वक मुझे ही अपने आत्मा रूप जानता है, वह अद्वैत स्वप्रकाश ब्रह्मके तद्रुप को प्राप्त होता हैं । जो जीव का यथार्थ स्वरूप है इस स्वरूप से अवस्थान करने का नाम सालोक्य मुक्ति है ।

सत्य, ज्ञान, अनन्त, आनन्द, इत्यादि लक्षण युक्त और षड़ विकार रहित मन, वाणी से परे सजातीय, विजातीय और स्वगत् भेद से रहित है, उस ब्रह्म को अद्वैत कहते हैं ।

हे राम ! यह जो शुद्ध स्वरूप का वर्णन किया है, इसे अपना वास्तविक आत्म स्वरूप जानकर सम्पूर्ण स्थावर जंगम जगत् को मेरे ही रूप में देखो । जैसे समस्त अलंकार एक स्वर्ण मात्र ही होते हैं।

जिस प्रकार आकाश में गन्धर्व नगर नहीं है और उसकी मिथ्या प्रतीति होती है, इसी प्रकार यह अनादि अविद्या से उत्पन्न हुआ मिथ्या जगत् मुझमें कल्पित किया जाता है।

जिस समय जो जीव मेरे वास्तविक स्वरूप को सद्गुरु द्वारा आत्म रूप जान लेता है, उस ज्ञान के प्रभाव से उसकी अविद्या नष्ट हो जाती है । तब मन, वाणी से परे मैं एक रह जाता हूँ ।

मैं नित्य परमानन्द, स्वप्रकाश और चिदात्मा स्वरूप हूँ । काल दिशा विदिशा पंचभूत मेरे शुद्ध स्वरूप में कुछ भी द्वैत नहीं है । मेरे सिवाय कोई दूसरी वस्तु नहीं है, मैं ही केवल स्व रूपों में विद्यमान रहता हूँ ।

मेरे निर्गुण स्वरूप में भक्तों की कल्पनानुसार कोई नील, पीत, श्याम आदि आकार और वर्ण भी नहीं है । कोई भी अपने चर्म चक्षु द्वारा मुझे देखने में समर्थ नहीं है । जो कोई सद्गुरु की कृपा से हृदय में बुद्धि के साक्षी रूप से जानते हैं, वे ही ज्ञानी मुक्त होते हैं, दूसरे नहीं ।

श्रीरामचन्द्रजी ने पूछा – हे भगवान ! मनुष्यों को परमात्मा का वास्तविक स्वरूप का ज्ञान किस प्रकार हो सकता है, वह साधन बताने की कृपा करें ।

शिवजी ने कहा –इस मृत्यु लोक से लेकर ब्रह्मादि लोक पर्यन्त देवताओं के दिव्य देह को एवं वहाँ के भोगों को भी नाशवान् जान कर भार्या, पुत्र, मित्र धनादि को क्लेश रूप अनित्य समझकर इनसे चित्त वृत्ति को पृथक् करे ।

विवेक, वैराग्य, षट्सम्पत्ति तथा तीव्र मुमुक्षुता सहित मोक्ष शास्त्र वेदान्त में श्रद्धा एवं निष्ठाशील होकर उसी के जानने का उपाय करता हुआ श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ गुरु के निकट जावे ।

उस गुरु के आगे अपने साथ लाया हुआ पदार्थ भेंट करके दंडवत् नमस्कार करे, फिर उठके हाथ जोड़के मुक्ति प्राप्ति अर्थात् परमात्मा का वास्तविक स्वरूप जानने की इच्छा प्रकट करे ।

बहुत काल तक सावधान हो उन्हें सेवा से सन्तुष्ट करे और मन लगाकर अहं ब्रह्मास्मि, अयमात्मा ब्रह्म, प्रज्ञानं ब्रह्म,तत्त्वमस्यादि महावाक्यों का अर्थ श्रवण, मनन करे और उन वाक्यों का तात्पर्य अपने प्रति निश्चय करे ।

जैसे कि बिजली करेंट से पंखे व मोटर में चुम्बक शक्ति से लोहा भ्रमण करता है, इसी प्रकार ब्रह्म की सत्तासे यह जड़ जगत् भ्रमण करता है । श्रवण को पुष्ट करके मनन करे । वाक्यों के अभेद की साधक एवं भेद की बाधक युक्ति द्वारा चिन्तन करने को ही मनन कहते हैं ।

ममता और अहंकार रहित सब में समान असंग होकर शम, दम, तितिक्षा, श्रद्धा आदि साधन सम्पन्न होकर निरन्तर ध्यान योग्य से आत्मा का आत्मा से ही ध्यान करने को ब्रह्मवादियों ने निदिध्यासन कहा है ।

ज्ञानाग्नि द्वारा सम्पूर्ण कर्म के क्षय हो जाने से मुमुक्षु को आत्मा का साक्षात्कार हो जाता है । यह साक्षात्कार किसी को शिघ्र तथा किसी को चिरकाल में होता है । जिसे प्रारब्ध प्रतिबन्धक नहीं होता है, उस मुमुक्षु को शिघ्र तथा जिसे प्रतिबन्धक होता है, उसे आत्म साक्षात्कार में देरी होती है । जैसे सूखी लकड़ी शिघ्र जल जाती है किन्तु गीली लकड़ी को जलाने योग्य बनाने में अधिक समय एवं सूर्य ताप की जरूरत होती है ।

जीव के किये हुए करोड़ों जन्मके संग्रह कर्म ज्ञान से तत्काल उसी प्रकार नष्ट हो जाते है, जैसे गुफा में हजारों वर्षों का घोर अन्धकार प्रकाश करते ही तत्काल नष्ट हो जाता है, किन्तु करोड़ों कर्मों के करने से भी जीव के अनादि संचित् कर्मों का नाश नहीं हो पाता है । कर्मों द्वारा उत्तरोत्तर बन्धन बढ़ता ही जाता है ।

हे राम ! ज्ञान होने पर उससे प्रारब्धवश से यदि कुछ पुण्य-पापादि हो जावे तो भी वह ज्ञानी उन कर्मों व फलों के प्रति आसक्त नहीं होता है ।

हे राम ! जिस प्रारब्ध भोग के लिये इस शरीर का निर्माण हुआ है वह कर्म भोग होने पर ही नष्ट होगा, वह ज्ञान द्वारा नष्ट नहीं होगा । हाँ, ज्ञान द्वारा भोगने की शक्ति, कष्ट सहन करने की युक्ति अवश्य प्राप्त हो जाती है । ज्ञानी जान लेता

है कि प्रारब्ध देह को स्पर्श करता है । मैं तो असंग, निष्क्रिय, आत्मा हूँ, सुख-दुःख मन के धर्म है ।

जिसको मोह अहंकार नहीं है, जो सम्पूर्ण संग से रहित है, जो सम्पूर्ण प्राणियों को आत्मा में और सम्पूर्ण प्राणियों में एक स्वात्मा को देखता है, इस प्रकार ज्ञानयुक्त विचरता हुआ जीवन्मुक्त कहाता है ।

हे राम ! जो व्यक्ति अमृत पान कर चुका है उसे दुग्धपान से क्या प्रयोजन ? इसी प्रकार जो आत्म ज्ञान को प्राप्त कर चुका है, उसके लिये कर्म-उपासना का क्या प्रयोजन हो सकता है ।

जो योगी ज्ञानामृत का पान कर तृप्त हो चुका है, उसके लिये लौकिक तथा वैदिक किसी प्रकार की कोई भी कर्तव्यता शेष नहीं है । यदि वह कर्तव्यता मानता है तो वह पूर्ण ज्ञानी नहीं है ।

वह ब्रह्म अपने में ही मैं रूप से विद्यमान है । उसको ही पूर्ण रूपेण जानना चाहिये । ब्रह्म से अधिक जानने योग्य कुछ नहीं । **नारद. परब्राजक उप.२२**

ज्ञाता देवे मुच्यते सर्वपाशै,
ज्ञात्वा देवं सर्वपाशाप हानिः **श्वेताश्वतर** ।१/११

इस स्वात्म स्वरूप परमात्मा को मैं रूप जानने से सभी बन्धन कट जाते है । हे राम ! साक्षी ही साक्षात् अपरोक्ष है । जो देह, इन्द्रिय, प्राण, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच ज्ञानेन्द्रिय तथा मन, बुद्धि वृत्तियों के भी पीछे उनका प्रकाशक है, जो समस्त प्रमेय का प्रकाशक एवं स्वयं सर्वदा सब से अविज्ञेय, अप्रमेय, अदृश्य, बना रहता है वही मैं हूँ यही अपरोक्षानुभूति है, यही आत्मदर्शन है ।

यही सहजावस्था, सहज समाधि, जीवन मुक्ति दशा है ।

'सर्वं खल्विदं ब्रह्म' 'ब्रह्मवेदम् सर्वम् । वेद

जब सब ब्रह्म है, अणु-अणु, कण-कण ब्रह्म है, तब मैं भी ब्रह्म ही हूँ क्योंकि मैं सर्व से, अणु-अणु से, कण-कण से पृथक नहीं हूँ । यदि मैं अपने को ब्रह्म से पृथक् मानता हूँ तो महापापी ब्रह्म हत्यारा कहलाऊँगा क्योंकि मैंनें अपने

को ब्रह्म से पृथक मान कर अखण्ड ब्रह्म सत्ता को खण्डित व कलंकित दर्शाकर, ब्रह्म का अपमान कर रहा हूँ ।

'अयामात्मा ब्रह्म' यह आत्मा ब्रह्म है तो फिर सब का आत्मा ब्रह्म ही है । क्योंकि आत्मा एक अखण्ड अद्वितीय सत्ता है । तब मैं आत्मा ब्रह्म ही सिद्ध हुआ ।

'सर्वधि साक्षी भूतम्'

जो सबकी बुद्धि का साक्षी होगा तो फिर वह मेरी बुद्धि का भी साक्षी हुआ । अतः मैं स्वयं ही ब्रह्म सिद्ध हुआ, क्योंकि सबकी बुद्धि को सबमें रहने वाला'मैं'ही जानता है , अन्य कोई मेरे मन, बुद्धि को नहीं जान सकता ।

हे राम ! मैं ब्रह्म हूँ इस विचार के बिना तुम अपने को कभी मुक्त नहीं कर सकोगे । आज तक कोई भी नित्य सिद्ध मुक्त आत्मा का विचार किये बिना केवल त्याग, वैराग्य, संन्यास लेकर ध्यान, समाधि आदि साधन कर मुक्त नहीं हो सका ।

जैसे पौधे का व्यष्टि भाव ही उसके व्यापक बगीचा होने में बाधक है । यदि वह व्यष्टि अहंकार त्याग दे तो फिर वह बगीचा लगा लगाया तैयार ही है । अलंकार ही उसके स्वर्ण होने में बाधक है । अलंकार अपना नाम-रूप का अहंकार का समर्पण कर दे तो अलंकार स्वर्ण ही है । इसी प्रकार जीव के ब्रह्म होने में उसके अपने व्यष्टि अहंकार ही बाधक है । यदि जीव अपना व्यष्टि अहंकार छोड़ दे तो जीव प्रथम से ही ब्रह्म रूप है । घटाकाश या मठाकाश का अपना अहंकार ही महाकाश होने से बाधक है । यदि घट-मठ अपना व्यष्टि अहंकार का समर्पण करदे तो दोनों एक अखण्ड, व्यापक आकाश ही है । यदि यहाँ बाला अहं मिट जाय तो फिर यह सर्व व्यापक ब्रह्म ही है ।

जो कभी था, कहीं था, यदि वह मिट जा यतो फिर वह पूर्ण रह जायगा जो सब समय, सब रूप में हैं, सब जगह है । यही वाला ही ब्रह्म की अखण्ड में बाधक है ।

जब मैं था तब हरि नहीं । अब हरि है मैं नाहि ।।

खुदी ही परदा है यार के दीदार केलिये
वरना कोई नकाब नहीं यार के लिये ।।

कैंचली युक्त सर्प भय को देता है किन्तु सांप के द्वारा कैचली त्याग देने पर उस कैचली से भय नहीं लगता है । इसी प्रकार माया युक्त आत्मा के होने से देहाध्यास होता है फिर देहाध्यास से देहाभिमान होने के कारण जन्म-मरण, शोक, भय आदि होते हैं किन्तु वही ज्ञानी आत्मनिष्ठ जीवन्मुक्त होने से उसे किसी प्रकार भय की प्रतीति नहीं होती है ।

जिस समय इस प्राणी के हृदय की वासना सम्पूर्ण नष्ट हो जाती है और वैराग्य प्राप्त होता है, तभी यह प्राणी अमृत हो जाता है, यही वेदान्त शास्त्र की मुख्य शिक्षा है ।

जिस प्रकार कैलास, वैकुण्ठ, स्वर्ग, अमेरिका, इंगलेंड आदि लोक ग्राम है, जहाँ यात्रा कर पहुँचा जाता है । इसी तरह परमात्मा, मुक्ति, आनन्द ऐसा कोई लोक, ग्राम, स्थान नहीं है, जहाँ समय एवं साधन द्वारा पहुँचा जावे । मोक्षार्थ केवल हृदय में जो जड़-चेतन की गांठ पड़ गई है, अर्थात् अनात्म देह में 'मैं आत्मा हूँ' इस प्रकार अज्ञान ग्रन्थि के नष्ट हो जाने से ही जीव मुक्त होता है ।

जिसका वृक्ष के अग्रभाग से चरण आगे पड़ जाता है, वह उसी समय नीचे भूमी पर पहुँच जाता है । इसी प्रकार ज्ञानी पुरुषों को ज्ञान होते ही मुक्ति की प्राप्ति हो जाती है। वह आत्मज्ञानी इस संसार बन्धन से सदा के लिये मुक्त हो जाता है । इसी को ज्ञान समकालीन मुक्ति या सद्यो मोक्ष कहते हैं ।

जीवन्मुक्त पुरुष तीर्थ में वा चाण्डाल के घर में देह त्याग करे अथवा ब्रह्म चिन्तन करता हुआ देह का त्याग करे किम्बा अचेतन होकर मृतक हो जाय किन्तु उसके मुक्ति में किंचित् भी सन्देह नहीं करना चाहिये । वह ज्ञानी पुरुष तो ज्ञान पाते ही मुक्त दशा में जीवन यापन कर रहा है । लोक दृष्टि में वह रोग पीड़ित या भोगासक्त दिखाई पड़े तो भी वह आत्मरूप ही रहता है ।

जीवनमुक्त ज्ञानी किसी प्रकार के वस्त्र धारण करे या नग्न विचरण करे, भक्ष्य-अभक्ष्य कुछ भी खा जाय, जहाँ चाहे शयन करे, वह प्रारब्ध कर्म क्षय हो

जाने से मुक्त हो जाता है । फिर भी वह वेद एवं लोक विरुद्ध आचरण नहीं करता है ।

जिस प्रकार दूध से निकाला घृत पुनः दूध में नहीं मिलेगा, इसी प्रकार ज्ञानवान् देहाभिमान रहित होकर संसार में सत्य एवं सुख बुद्धि कर आसक्त नहीं होते हैं ।

हे रामचन्द्र ! इस अध्याय को जो प्रतिदिन पढ़कर अपने स्वरूप का निश्चय करते हैं या श्रवण करते हैं, वे श्रवण एवं मनन मात्र से देह अभिमान व संसार बन्धन से छूट जाते हैं ।

हे राम ! तुम्हारा अन्तःकरण सीता वियोग के कारण संशय वश दुःखी हो रहा है इस कारण तुम इस अध्याय का नित्य पाठ करो, इससे अनायास तुम्हारी मुक्ति हो जायेगी ।

चतुर्दश अध्याय

रामचन्द्र ने पूछा–हे भगवन ! अति सूक्ष्म और इन्द्रियों से परे अग्राह्य वह ब्रह्म जो मेरा स्वरूप है, वह कैसे ग्राह्य हो सकता है । उस सूक्ष्म तत्त्व में चित्त की वृत्ति किस प्रकार हो सकती है, इसी से बुद्धि व्यग्र है इसका उपाय आप मुझे बताने की कृपा करें ।

हे राम सावधान होकर सुनो ! यदि तुम्हें मेरे द्वारा उपदिष्ट ब्रह्म ज्ञान बुद्धि ग्राह्य नहीं लगता है तो प्रथम सगुण उपासना कर चित्त को एकाग्र करो । फिर निर्गुण स्वरूप में चित्त को लगाओ । इस प्रकार विवेक, वैराग्यादि साधनों द्वारा ब्रह्म जिज्ञासा उदय होने पर ब्रह्मज्ञान का कथन करनेवाले ब्रह्मज्ञानी सद्‌गुरु के शरण में जाकर उनसे अपने कल्याण के लिये प्रार्थना करे ।

हे राम ! यह अन्नमय स्थूल देह में ही जन्म–मृत्यु व्याधि विद्यमान है । जन्मने वाले की मृत्यु निश्चित है । तुम अपने को असंग, निराकार, निष्क्रिय आत्मा जानो ।

ऐसे नश्वर विकारी देह में अज्ञानी जीव की अहंभाव से जो आत्मबुद्धि दृढ हो जाती है वह सहज नहीं मिटती है । उद्दालक ऋषिने अपने पुत्र श्वेतकेतु का अनको युक्ति द्रष्टान्त एवं प्रमाण द्वारा तत्त्वमसि महावाक्य का नव बार उपदेश किया था तब वह संशय मुक्त हो स्वरूप में स्थित लाभ कर सका था । आत्मा कभी जन्म नहीं लेता और इसका कभी नाश भी नहीं होता कारण कि यह नित्य है । उत्पत्ति होना, रहना, बढ़ना, यूवा, वृद्ध हो मरना यह इस शरीर की अवस्था है ।

घट में स्थित आकाश जिस प्रकार असंग निर्विकार है, इसी प्रकार इस देह में आत्मा विकार रहित निर्विकार रूप में स्थित है । इस प्रकार देह और आत्मा दोनों के परस्पर विरुद्ध धर्म है । अज्ञानी जन देह को आत्मा अर्थात् मैं मानते हैं और ज्ञानी देह से पृथक् अपने को आत्म रूप जानते हैं । प्राण के द्वारा देह गमनागमन करता है एवं भूख-प्यास लगना इसका धर्म है ।

हे राम ! परिवर्तन का द्रष्टा वही हो सकता है जो स्वयं कभी न बदलता हो । मेरा साक्षी, द्रष्टा तो भगवान भी नहीं हो सकता क्योंकि वह तो स्वयं आकर जाने वाला, बदलने वाला है । वह सदा रहने वाले को कैसे जान सकेगा ? भगवान की स्थिति कैसी है ? **"सम्भवामि युगे युगे"**

भगवान कहते हैं - मैं युग युग में प्रकट हुआ करता हूँ ।

मेरी स्थिति कैसी है ?-

ममैवांशो जीव लोके जीवभूतः सनातनः ।

हमारा सम्बन्ध परमात्मा के साथ है । हम परमात्मा में ही स्थित हैं । देह, प्राण, इन्द्रिय, मन, बुद्धि का सम्बन्ध प्रकृति के साथ है । शरीर के साथ हमारा कभी मिलन हुआ ही नहीं । प्रकृति एवं पुरुष का मिलन क्षितिज अर्थात् आकाश व पृथ्वी के मिलन जैसा असम्भव है । हम परमात्मा से अलग थे नहीं, है नहीं और कभी पृथक् हो भी नहीं सकते । यदि दूर से दूर कोई वस्तु हम से है तो वह शरीर हैं तथा हमसे समीप से समीप यदि कोई वस्तु है तो वह परमात्मा ही है ।

हे राम ! जैसे दर्पण या कुवें मैं शरीर का प्रतिविम्ब उल्टा दिखाई पड़ता है । इसी प्रकार अज्ञान के कारण शरीर दूर होकर भी मैं रूप समीप दिखाई पड़ता है एवं परमात्मा स्वयं होकर भी दूर से दूर दिखाई पड़ता है । शरीर तो प्राप्त मालूम पड़ता है एवं परमात्मा अप्राप्त दिखाई पड़ता है । जीव का परमात्मा से सम्बन्ध जुड़ा हुआ है, जोड़ना नहीं है किन्तु जीव शरीर से सम्बन्ध जोड़ता है ।

प्रकृति के कार्य रूप स्थूल, सूक्ष्म, कारण शरीर, तथा जाग्रत, स्वप्न सुषुप्ति अवस्था के साथ अपना सम्बन्ध उन अवस्था से अपना तादात्म्य करना ही बन्धन का कारण है ।

अतः परिवर्तनों का साक्षी वही होता है जो स्वयं अपरिवर्तनशील है । मैं ही वह साक्षी ब्रह्म हूँ जो समस्त परिवर्तनों को जान रहा है । हे राम ! तुम अपने साक्षी स्वरूप को पहचान कर शिघ्र जीवन् मुक्ति का अनुभव करते हुए शोक मोह छोड़कर सुख से विचरण करो ।

जिस प्रकार घड़े में मदिरा रखा हुआ होने पर घड़े में स्थित आकाश उसकी गन्ध से लिप्त नहीं होता । वैसे ही देह की क्रियाओं से देह में स्थित आत्मा देह के धर्मों से लिप्त नहीं होता है । **अध्यात्म उप. ५२**

जिस तरह घर को प्रकाशित करने वाले बिजली घर में होने वाली वस्तु या व्यक्तियों की क्रिया का कोई स्पर्श बल्ब या दीपक को नहीं होता है । इसी तरह साक्ष्य दृश्य पदार्थों के भी सभी धर्म साक्षी रूप आत्मा को स्पर्श नहीं करते हैं ।

मुण्डक उप. २३

प्रदातव्य मिदं शास्त्र नेतरेभ्य प्रदायेत ।
दाताऽस्य नरकं यादि सिध्यते न कदाचन ।। ४८ जा.द. उप.

यदि कोई अनाधिकारी, अवज्ञाकारी पुत्र अथवा नाम मात्र के दम्भी अहंकारी, निन्दक, अश्रद्धालु को इस परम पवित्र विद्या का दान करेगा तो वह शिष्य सहित ब्रह्मविद्या प्रदाता गुरु नरक को प्राप्त करेगाा ।

ना पुत्राय प्रदात्वयं निष्याय कदाचन ।
गुरुदेवाय भक्ताय नित्यं भक्ति पराय च ।। ४७ जा.द.उप.

यह विद्या न तो अधम पुत्र को देनी चाहिये और न अधम शिष्य को देना चाहिये । प्रत्युत उत्तम या मध्यम पुत्र या शिष्य को ही देनी चाहिये । जो नित्य भक्ति परायण रहे उसे ही देना चाहिये ।

आत्मा चैतन्य रूप है जिसके द्वारा जीव अपने शरीर को कार्य करते हुए देखता है । आत्मा ही परब्रह्म, निर्लेप और सुख का साधन है ।

प्राणमय कोश के अन्तर्गत मनोमय कोश है, वह संकल्प विकल्प रूप और पंचज्ञानेन्द्रियों से युक्त है । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मात्सर्य और मद यह शत्रुओं का षड् वर्ग और ममता इच्छादिक यह सम्पूर्ण मनोमय कोश है ।

मनोमय कोश के अन्तर्गत विज्ञानमय कोश है जिसमें पाचं ज्ञानेन्द्रिय सहित बुद्धि है । इसमें जीव अभिमान कर कर्ता-भोक्ता बन लोक परलोक गमन करता है । व्यवहार में जिसको जीव कहते हैं । जिसमें कर्तृत्वपन का अभिमान है वह निःसन्देह जीव इसी विज्ञानमय कोश में रहता है । विज्ञानमय कोश के अन्तर्गत आनन्दमय कोश है ।

हे राम ! आकाश, वायु, तेज, जल तथा पृथ्वी इन पंच भूतों के सात्विक अंश से ज्ञानेन्द्रियों की उत्पत्ति होती है, श्रोत्र, त्वचा, चक्षु, जिह्वा, घ्राण यह पंच ज्ञानेन्द्रियाँ भूतों के क्रम से उत्पन्न होती है ।

भूतों के मिलित रजोगुण से व्यान, उदान, समान, प्राण-आपान तथा नाग, कुर्म, कृकल, देवदत्त, धनंजय यह उपप्राण उत्पन्न होते हैं । इन्हीं भूतों के स्वतंत्र रजोगुण से पंच कर्मेन्द्रिय-वाक, पाणि, पाद, लिंग तथा गुदा उत्पन्न होती है ।

ज्ञानेन्द्रियाँ के कार्य शब्द, स्पर्श, रूप, रस तथा गन्ध ग्रहण करना है एवं कर्मेन्द्रियों का कार्य बोलना, ग्रहण-त्याग, चलना, मूत्र-मैथुन तथा मल त्याग करना है । जीवके अभिमान करने के स्थूल, सूक्ष्म तथा कारण तीन शरीर तथा जाग्रत, स्वप्न तथा सुषुप्ति अवस्थाएं है । इनमें अहंकार करने के कारण ही जीव वन्धन को प्राप्त होता है ।

स्थूल शरीर में अन्नमय कोश, सूक्ष्म शरीर में प्राण, मन तथा विज्ञानमय कोश तथा कारण शरीर में आनन्दमय कोश है ।

पंच ज्ञानेन्द्रिय, पंच कर्मेन्द्रिय, पंच प्राण तथा मन, बुद्धि यह १७ तत्त्वों का सूक्ष्म शरीर माना जाता है । इस लिंग शरीर में चैतन्य का आभास पड़ने से यह जीव कहलाता है । यह जीव लिंग शरीर में अध्यास को प्राप्त होता है और कर्तृत्वपन का अभिमान करने के कारण कर्म और उपासना के फल से इस लोक तथा ८४ लाख योनियों मे भटकता रहता है ।

जिस समय सुषुप्ति अवस्था में यह जीवात्मा लिंग शरीर के अध्यास को छोड़कर केवल अपने स्वरूप में रहता है तब इसकी साक्षी संज्ञा होती है । जीव ही कर्म कर्ता है एवं ईश्वर द्रष्टा फल दाता होता है ।

हे राम ! क्षेत्रज्ञ जीवात्मा को रथी, शरीर को रथ, बुद्धि को सारथी, मन को लगाम कहते हैं ।

इन्द्रियों को घोड़े रूप जानना और यह इन्द्रिय रूप घोड़े जगत् के शब्द, स्पर्श, रूपादि विषय जंगल में विचरते हैं । इन्द्रिय व मन के सहित जीवात्मा भोक्ता कहलाती है । वास्तव में उपाधि बिना यह निरुपाधिक आत्मा शुद्ध है । आत्मा कभी कर्तृत्व-भोक्तृत्व को प्राप्त नहीं होता है । रथी, रथ में बैठा है, सारथी घोड़ों को चलाता है । जैसे दुष्ट घोड़े सारथी का कहना न मान रथ को लेकर कहीं गडढे में डाल देते हैं, इसी प्रकार दुष्ट इन्द्रियाँ इस शरीर रूप रथ को विषयों में ले जाकर पटकती हैं, तब सब इन्द्रियों के सहित जीवात्मा दुःखी होता है ।

अतः साधक पंचकोश की क्रम से उपासना करते हुए उनसे चित्त हटावे तथा उन्हें असार रूप जानते हुए सबके अन्तःसारभूत आत्मा को प्राप्त होता है ।

श्रीरामचन्द्र बोले, हे भगवन ! जब श्रवणादि साधन द्वारा ही आत्म स्वरूप की प्राप्ति हो जाती है तो फिर वेद शास्त्र के जानने वाले पण्डित यज्ञशील, सत्यवादी उस आत्मज्ञान को श्रवण करने में प्रवृत्त क्यों नहीं होते ? और कोई सुनकर भी आत्मा को नहीं जान पाते और कोई जानकर भी नहीं मानपाते ऐसा क्यों ?

यद्वाचानभ्युदितं येन वागभ्युद्यते
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। ४।। केनोपनिषद प्रथम अध्याय

हे राम ! प्रायः साधक ब्रह्म प्राप्ति को इस प्रकार समझते हैं जैसे इन्द्रिय द्वारा बाह्य सांसारिक पदार्थों की प्राप्ति एवं उपभोग किया जाता है, वैसे ही वे समझते है कि हम ब्रह्म को भी इसी प्रकार साधन का मुल्य चुकाकर प्राप्त करलेंगे । किन्तु वे नहीं जानते है कि परमात्मा आवाङ्गामनसगोचर है ।

जो वाणी के द्वारा नहीं कहा जा सकता, प्रत्युत जिसकी शक्ति से वाणी बोलने में समर्थ होती है, उसे ही ब्रह्म जानो । वाणी द्वारा बताये जाने वाले जिस दृश्य तत्त्व की ये अज्ञानी लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है ।

यन्मनसा न मनुते येनाहुर्मनो मतम् ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासतो ।।५

हे राम ! कोई भी भक्त इस ब्रह्म को मन के द्वारा समझ नहीं सकते हैं, परन्तु जिसकी शक्ति पाकर यह मन जानने में समर्थ होता है, उसे तुम ब्रह्म जानो । मन, बुद्धि से जो जाना जाता है वह ब्रह्म का वास्तविक स्वरूप नहीं है ।

यच्चक्षुषा न पश्यति येन चक्षुँषि पश्यति ।
तदेव ब्रह्म त्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासते ।। ६

हे राम ! परमब्रह्म परमात्मा को कोई भी अपने प्राकृत विकारी नेत्रों से नहीं देख सकता, परन्तु जिसकी शक्ति द्वारा नेत्र रूप देखने में समर्थ होते है, वह ब्रह्म है । नेत्रों द्वारा दिखाई देने वाले जिस कल्पित रूप की ये संसारी लोग उपासना करते हैं वह ब्रह्म का वास्तविक रूप नहीं है । किन्तु यह गुप्त बात उन अज्ञानियों को नहीं बताना चाहिये । अन्यथा वे बिना गुरु के ज्ञान को ग्रहण भी नहीं कर पावेंगे और अपनी कल्पित भक्ति भी छोड़ बैठेंगे । भेद भक्ति कल्पित होने पर भी जीव को दुर्गति से तो बचाती ही है ।

यच्छ्रोत्रेण न श्रृणोति येन श्रोत्रमिदं श्रुतम् ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदं यदिदमुपासेत ।। ७

हे राम ! इस आत्म ब्रह्म को कोई अपने कानों के द्वारा नहीं सुन सकते किन्तु इन श्रोत्रेन्द्रियों को श्रवण करने की शक्ति जिसके द्वारा प्राप्त हो रही है , उसे ही तुम ब्रह्म जानो । परन्तु श्रोत्र इन्द्रिय द्वारा किसी पण्डित, कथाकार से सुने रूप की तुम उपासना कभी मत करना, क्योंकि वह ब्रह्म दृश्य रूप नहीं है किन्तु सर्वद्रष्टा सर्व साक्षी है ।

यत् प्राणे न प्राणिति येन प्राणः प्राणीयते ।
तदेव ब्रह्मत्वं विद्धि नेदंयदिदमुपासते ।।८

हे राम ! यह प्राण भी ब्रह्म नहीं है । बल्कि जिसकी शक्ति पाकर प्राण भीतर–बाहर निरन्तर होते रहते है, उसे तुम ब्रह्म जानो । ये संसारी लोग जिस जड़ प्राण की उपासना करते है वह परमात्मा नहीं है ।

हे राम ! जो मन का मन है, प्राण का प्राण है, वाक् का वाक् है, जो कर्ण इन्द्रिय का भी कान है और जो चक्षु का भी चक्षु अर्थात् देखने वाला है । उसे कोई

नहीं देख पाता है, क्योंकि वहाँ न चक्षु पहुँचती है, न वाणी पहुँचती है और न मन ही पहुँच सकता है । सर्व प्रकाश, स्वयंप्रकाश ब्रह्म को वह ब्रह्म मैं हूँ, इस प्रकार जानता है, वे ज्ञानी इस लोक में जीवन्मुक्त होकर देहान्त पर विदेहमुक्त हो अमर हो जाते हैं ।

श्री शिवजी बोले – हे महाबाहो ! मेरी माया का उल्लंघन करना बड़ा कठिन है ।

जिनकी श्रद्धा परमात्मा में नहीं है, अपितु इच्छित कर्म फल प्राप्ति में उनको उनका अभिष्ट फल मिल जाता है, वे सुख भोगकर थोड़े काल में इस मृत्यु लोक को पुनः प्राप्त हो जाते हैं, कारण कि उन्हें तो कर्म फल ही इष्ट है और कर्म से प्राप्त फल नाशवान होता है ।

हे राम ! यह आत्म उपनिषद ज्ञान साधारण पुरुषों को उपदिष्ट नहीं करना चाहिये, क्योंकि यह अत्यन्त ही गोपनीय है । किन्तु सात्विक बुद्धि वाले अन्तर्मुखी तथा अपने गुरु की सेवा में रत हो ऐसे साधको, भक्तों को इसका उपदेश अवश्य तुरन्त करना चाहिये । ब्रह्मनिष्ठा में कभी प्रमाद नहीं करना चाहिये, क्योंकि प्रमाद ही मृत्यु है ।

गृहस्थे ब्रह्मचारी वा वान प्रस्थोऽथ भिक्षुकः ।
यत्र यत्र स्थितो ज्ञानी परमाक्षर वित्सदा ।। ४९ जा.द.उप.

ब्रह्मज्ञानी चाहे ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ हो चाहे संन्यासी ही क्यों नहीं, वह जहाँ कहीं निवास करता हो वह परमात्मा का मैं रूप से जानने वाला सदा पवित्र एवं पुज्यनीय है ।

इस बात को न जानकर जो अधम मनुष्य कर्मों को करते हैं, वे माता के गर्भ में उत्पन्न होकर बारम्बार मृत्यु के मुख में पड़ते हैं । अनेक प्रकार की योनियों में उत्पन्न हो असहनीय कष्ट पाकर किसी एक प्राणी को करोड़ों जन्म के संचित् किये पुण्य से परमात्मा में भक्ति जाग्रत होती है । फिर वही मेरा भक्त ज्ञान को प्राप्त होता है, दूसरा करोड़ों जन्मों में भी कर्म करने से मुझे भेद रूप से कभी प्राप्त नहीं कर सकेगा, ऐसा मेरा वेद मत है ।

इस कारण हे राम ! और सब त्याग कर केवल मेरी भक्ति करो, दूसरे और सब धर्मों का परित्याग कर एक आत्मा की शरण में स्थित हो जाओ, मैं तुम्हें सब पापों से मुक्ति दिलाकर शोक के सागर से पार करा दूँगा ।

'तरति शोकं आत्मवित्' क्योंकि आत्मा को पुण्य–पाप, बन्धन, सुख–दुःख स्पर्श ही नहीं करपाते हैं । तुम अपने कल्याण के लिये कुछ चिन्ता मत करो ।

हे राम ! तुम कुछ भी कर्म करते हो, भोजन, शयन हवनादि नित्य नैमित्तिक कर्म करते हो, जो तप करते हो, वह सब मेरे अर्पण करदो । हे राम ! साधक के लिये इससे अधिक दृढ़ भक्ति होने का दूसरा साधन नहीं है । इसका तात्पर्य यह है कि शरीर, इन्द्रिय और प्राण तथा मन, बुद्धि के जो धर्म हैं, उनके साथ तादात्म्यता का त्याग करदो एवं अपने आत्मा में स्थित हो जाओ। जिस इन्द्रिय का जो कर्म है, उसी इन्द्रिय को उस कर्म का कर्ता जानों एवं अपने को उसका द्रष्टा साक्षी, असंग, निष्क्रिय, आत्मा जानो ।

पंचदश अध्याय

श्रीरामचन्द्र बोले, हे भगवन ! आपकी भक्ति कैसी है और वह किस प्रकार होती है, जिसकी प्राप्त होने से जीव निर्वाण को प्राप्त हो जाता है अर्थात् मुक्त पद प्राप्त करलेता है । वह मुझे आप बतलाने की कृपा करें ।

श्री शिवजी बोले, हे राम ! जो वेद अध्ययन, दान, यज्ञ, सम्पूर्ण कर्मों को मेरे निमित्त करता है, वह मेरा भक्त है और मेरा प्रिय है । वह इस प्रकार है कि –

आत्मा त्वं गिरिजा मतिः सहचराः प्राणाः
शरीर गृह पूजाते विषयोप भोग रचना
निद्रा समाधिस्थितिः ।

संचारः पदयोः प्रदक्षिणविधिः स्तोत्राणिसर्वागिरो
यद्यत्कर्म करोमि तत्तदखिलंशम्भो तवाराधनम् ।।१।।

तात्पर्य यह कि यह शरीर मन्दिर शिवालय है, इसमें सच्चिदानन्द आप शिव रूप है, बुद्धि रूप पार्वतीजी है, आपके साथ चलने वाले सेवक प्राण है और जो मैं विषयानन्द के निमित्त खाता, पीता, देखता, सुनता, बोलता, स्पर्शादि करता हूँ यही आपकी पूजा है, निद्रा ही समाधि है, फिरना आपकी ही प्रदक्षिणा है, क्योंकि आप सर्वत्र है, वचन ही आपकी स्तुति है, क्योंकि जिससे भी मैं बात करता हूँ, उस रूप में आप ही विद्यमान रहते हैं । हे शिव ! इस प्रकार मैं आपकी आराधना करता हूँ, आप मेरे ऊपर कृपा करो, इस प्रकार मेरी आराधना स्वीकार करो और सभी कर्मों को मैं आपको अर्पण करता हूँ ।

हे राम ! किसी प्राणी की हत्या न करनेवाला, सत्य बोलनेवाला, चोरी न करने, बाह्याभ्यंतर शौचयुक्त, इन्द्रिय निग्रह करने वाला, वेदाध्ययन में तत्पर जो रहता है, वह मेरा भक्त मेरा प्यारा है ।

षोड़श अध्याय

श्रीरामचन्द्र बोले – हे भगवन ! मोक्ष मार्ग का कौन व्यक्ति अधिकारी होता है, वह कृपा कर बतलावें ।

शिवजी बोले – हे राम ! मानव मात्र मोक्ष प्राप्त करने का अधिकारी है । यह मानव जीवन तो मोक्ष के द्वार रूप ही है । इसमें किसी भी प्रकार के नीच कर्म करने वाले पापी, दुराचारी, हत्यारे भी क्यों न हो, किन्तु जिसके मन में सद्‌गुरु की सेवा एत्तं सत्संग के प्रभाव से आत्म कल्याण की जिज्ञासा जाग्रत हो गई है, वे सब इसके अधिकारी है ।

जिसका चित्त संसार के अनित्य भोग पदार्थों में, लोकवासना, देहवासना एवं शास्त्र वासना में फंसा है, वे इस मोक्ष मार्ग के अधिकारी नहीं है । जो मूर्ख, अन्धे, बहरे, मूक हैं, वे भी इसके अधिकारी नहीं है ।

जो सकामी है, केवल प्रेय सुखार्थ दृष्ट फल की प्राप्ति करने में लगे हैं, वे भी मोक्ष के अधिकारी नहीं है ।

जो मुझसे तथा ब्रह्मके उपदेश करने वाले ज्ञानी गुरु से द्वेष करने वाले हैं, वे मोक्ष के अधिकारी नहीं है । उसका करोड़ों जन्मों में भी उद्धार नहीं हो सकता ।

विवेक पूर्वक 'शिवोऽहम्', सोऽहम्, द्रष्टा, साक्षी आत्मा हम इस प्रकार की वृत्ति करनेवाला मनुष्य संसार से पार हो जाता है । इस तादात्म्य ध्यान की समता में सहस्त्र भाग के समान यज्ञ, तप, दानादि सत्कर्म नहीं हो सकते ।

सोऽहम्, शिवोऽहम्, 'अहं ब्रह्मास्मि' इस प्रकार का अपने स्वरूप के प्रति निश्चय करने वाले ध्यान के समान कोई साधन नहीं है । इस ध्यान योगी को

किसी भी प्रकार का विपरित फल नहीं होता, अतः प्रत्येक कर्म करते हुए अपने सत्य स्वरूप का ध्यान करते रहना चाहिये ।

हे राम ! जो अपने को अनात्म शरीर से भिन्न केवल आत्मा रूप देखते हैं, तथा संसार के सभी प्राणियों में शिव स्वरूप आत्मा को देखते हैं, उन्हें किसी दूसरे प्रकार के मंत्र, तप, कर्म, ध्यानादि करने की किंचित् भी आवश्यकता नहीं है । यदि वे अन्य मंत्र, जप, तप, पूजा, पाठ, तीर्थ, मन्दिर ध्यानादि करते हैं तो उन्हें अविनाशी, अश्रद्धालु, मूर्ख ही जानना चाहिये ।

हे राम ! जो अपने आत्मा को ही परमात्मा रूप जानता है, इस प्रकार शिवोऽहम्, सोऽहम् रूप से पूजन करता है, उसकी पूजा के बराबर दूसरी पूजा नहीं है । आत्मा में परमात्मा की दृढ़ भावना करने वाला चाण्डाल भी मेरे लोक को प्राप्त होता है ।

सम्पूर्ण कर्म आत्मा को ही अर्पण करना, उसी का विचार करना, पापाचारण न करना, यही आत्मा की पूजा है ।

जो नित्य प्रतिदिन शिव गीता को पढ़ता है और नित्य शिवोऽहम्, सोऽहम् का अर्थ सहित जप करता अथवा श्रवण कर मनन करता है, वह निःसन्देह संसार से मुक्त हो जाता है ।

सूतजी बोले– हे शौनकादि ऋषियों ! भगवान शिवजी राम को इस प्रकार उपदेश कर वहाँ से अन्तर्धान हो गये और आत्मज्ञान के प्राप्त होने से रामचन्द्र ने भी अपने को कृतार्थ माना ।

इस कारण हे मुनियों ! तुम भी नित्य प्रति सावधान होकर शिव गीता को अर्थात् आत्मज्ञान को प्राप्त करने में तत्पर रहो । इसके द्वारा श्रद्धालु की अनायास ही मुक्ति हो जायगी, इसमें कुछ भी सन्देह नहीं । इस आत्म पूजा में, आत्म ध्यान में, आत्म ज्ञान में, किसी भी प्रकार का शारीरिक, मानसिक, आर्थिक क्लेश एवं व्यय नहीं है । केवल श्रवण एवं मनन से ही मुक्ति हो जाती है । हे ऋषियों ! इस कारण तुम नित्य प्रति आत्म प्राप्ति के लिये प्रयत्न करो, शिवगीता का स्वाध्याय करो ।

शौनकादि ऋषियों ने कहा–जन्म देने वाले माता पिता से ब्रह्मज्ञान देने वाले सद्गुरु का महत्व एवं गौरव अधिक है । इस कारण हे सूतजी ! आज से तुम्ही हमारे आचार्य, पिता, गुरु हो । वास्तव में ही तुमसे अधिक कोई दूसरा हमारा कल्याणकारी गुरु नहीं है, क्योंकि आपने हमको अविद्या से मुक्त कर जीवन्मुक्ति प्रदान की है।

ज्ञानयोग पराणां तु पाद प्रक्षालितं जलम् ।
भावशुद्धार्थ मज्ञानां ततीर्थं मुनि पुङ्गव ।। जाबाल दर्शन उप. पृ६

अज्ञानी मनुष्यों के अन्तःकरण की शुद्धि के लिये ज्ञानयोग में तत्पर योगियों का चरण–जल श्रेष्ठ तीर्थ है । तुम गुरु के आचरण को मत देखना अन्यथा पार्वती भी राम के लीलामय जीवन को देख भ्रम में पड़ गई थी ।

जे सो चन्दा उगहिं, सूरज चढे हजार ।
ऐते चान्दना होंदिया, गुरु बिन घोर अन्धार ।।

गुरु वही जो तुम्हारी ना समझी को, अज्ञान को मिटा सके, देह भाव से मुक्त कर, ब्रह्म भाव जगा सके ।

प्रायः लोग आसन प्राणायाम सिखने में लगे रहते हैं, वे देह में चिपके हुए है । कुछ ज्योति दिखाने, नाद सुनाने, कुण्डलनी जगाने, दशम द्वार, सहस्त्रार में चढ़ाने की कला सिखाने में लगे हैं । यह सब नट, मदारी ही है । यह ब्रह्म ज्ञानी नहीं है, यह सब मन में उलझे हैं ।

सच्चा सद्गुरु तुम्हें मन, बुद्धि के भी पार साक्षी भाव में स्थित करता है, अतः वे मन बुद्धि को निष्क्रिय करने में नहीं जोड़ता है । वह तुम्हें देह व मन, बुद्धि का साक्षी रहना सिखाता है । धर्मों को अपना कभी न मानो, किसी गुरु के बहकावे में आकर आत्मज्ञान से विमुख न बनो ।

मन को रोकना, मोड़ना, तोड़ना, सुलादेना हमारा लक्ष्य नहीं । प्रत्युत मन के प्रति साक्षी की स्मृति जाग्रत रखना है । साक्षी की खोज करना है ।

कल्याण स्वरूप परमात्मा इसी देह मैं द्रष्टा रूप, साक्षी रूप में विद्यमान है उसे न जानने वाला मूर्ख तीर्थ मन्दिर मूर्ति चित्र, जप, तप, पाठ, पूजा, यज्ञादि में तथा जल, पाषाण निर्मित तीर्थ स्थलों में खोजता रहता है । **जा.द.उप.४/५६**

प्राणिनां देह मध्ये तु स्थितो हंसः सदाच्युतः ।
हंस एवं परं सत्यं हंसः एव तु सत्यकम् ।। ६० ब्रह्मविद्या उप.

हंस रूप परमात्मा ही सब देवों तथा जीवों के हृदय मन्दिर में विराजमान हैं उन्हीं के साथ जीव सोऽहम् भावना अर्थात् एक आत्मा की भावना करें ।

हंस विद्यामृते लोके नास्ति नित्यत्व साधनम् ।
यो ददाति महाविद्यां हसंव्यां पावनीं पराम् ।। २६

हंस रूपी विद्यामृत समान जगत में आत्म तत्त्व का अन्य कोई साधन नहीं है । जो महापुरुष इस विद्या का उपदेश करते हैं वह साक्षात् ब्रह्म रूप ही है **'ब्रह्मवित ब्रह्मैव भवति'** ।

तस्यदाम्स्यं सदा कुर्यात् प्रजयापरया सह ।
शुभं वाऽशुभमन्यद्वं यदुक्तं गुरुणा भुवि ।। २७।।

उन गुरुदेव की सदैव ज्ञान पूर्वक सेवा करनी चाहिये और गुरु जो कुछ शुभाशुभ आदेश दे उसका शिष्य को बिना विचारे श्रद्धा, प्रेम व सन्तोषयुक्त भाव से पालन करना चाहिये ।

तत्कुर्याद विचारेण शिष्य सन्तोषसंयुक्तः ।
हंस विद्यामिमां लब्ध्वांगुरुशुश्रुषया नरः ।। २८

सद्गुरु से इन हंस विद्या को प्राप्त करके, आत्मा से आत्म भाव को ग्रहण करे अर्थात् मैं स्वयं आत्मा हूँ, इसको अपने देह के नाम, जाति की तरह निष्ठा से धारण करे, केवल वाणी से या बुद्धि से ही जान कर, रट कर न छोड़ दें । आत्मनिष्ठ ज्ञानी पुरुष को अपने कल्याणार्थ किसी प्रकार के वर्णाश्रम जाति, एवं कर्म, उपासना की बातों को निःसंकोच भाव से छोड़ देना चाहिये । अब केवल सगुण रूप साक्षात् गुरु भगवान की ही सेवा सुश्रुषा करे । इसी साधन से जीव का परम कल्याण है ।

आत्मानमात्मना साक्षात् ब्रह्म बुद्धया सुनिश्चलम् ।
देहजात्यादि सम्बन्धान्वर्णाश्रम समन्वितान ।। २९

वेदाशास्त्रणि चान्यानि पद पासुमिव त्यजेत् ।
गुरु भक्तिं सदा कुर्यांच्छ्रेयसे भूयसे नरः ।। ३०

गुरुरेव हरिः साक्षात् न अन्यइत्य ब्रवीच्छुतिः
श्रुत्वा यदुक्तं परमार्थमेतत् तत सन्शयो नात्र ततः समस्तम ।।३१

श्रुति में कहा गया है कि गुरु साक्षात् हरि है, कोई अन्य नहीं है । श्रुति का यह कथन निःसन्देह सत्य समझना चाहिये । श्रुति का विरोध होने पर कुछ भी सिद्धान्त ग्रहण करने योग्य नहीं है । जो श्रुति द्वारा प्रमाणित नहीं होगा, वह कभी ग्रहण न करे, अन्यथा वह महान् विनाशकारी, अनर्थकारी ही होगा ।

सप्तदश अध्याय

शिवजी बोले – हे भक्तों ! अनके प्रकार के तप ज्ञान दान और यज्ञ से पुरुष मुझे इस प्रकार नहीं जान सकते हैं, जिस प्रकार श्रेष्ठ भक्ति करने वाले मुझको जानने को समर्थ होते हैं । केवल श्रेष्ठ भक्ति के साधना रूप 'सोऽहम्, शिवोऽहम्' चिन्तन करने वाले मुझे शिघ्र आत्मरूप से जान सकते हैं ।

आत्म तीर्थ समुत्सृज्य बहिस्तीर्थानियो व्रजेत ।
करस्थं स महारत्नं त्यक्त्वा काचं विमार्ग ते ।। ५०

हे राम ! आत्मतीर्थ सब तीर्थो में श्रेष्ठ है । जो मनुष्य अपने हृदय में स्थित परम पवित्र नित्य शुद्ध साक्षात् कल्याणकारी आत्म तीर्थ को छोड़ अन्य तीर्थों में भटकता है, वह तो मानो हाथ में रखे हुए बहुमूल्य हीरे को त्याग कर कांच को पकड़ता है ।

तीर्थानि तोय पूर्णानि देवान् काष्ठादि निर्मितान् ।
योगिनो न प्रपुज्यते स्वात्म्य कारणात् ।।५२।।

योगीजन आत्म तीर्थ में श्रद्धा करते हैं, इसलिये वे जलमय तीर्थों में अज्ञानी सकामी मन्द मति वालों की तरह इधर-उधर नही भटकते हैं । ज्ञानी जन काष्ठ, पाषाण, धातु निर्मित कल्पित मूर्तियों, प्रतिमाओं में श्रद्धा विश्वास नहीं करते हैं ।

तिलेषु च यथा तैल पुष्पे गन्धे इवा स्थितः ।
पुरुषस्य शरीरेऽस्मिन् स बाह्याभ्यन्तरे ।।३५

जिस प्रकार तिलों में तैल, पुष्पो में गन्ध, दूध में घृत विद्यमान रहता है किन्तु उसे साधन द्वारा प्राप्त किया जाता है । इसी तरह समस्त प्राणियों के भीतर बाहर परमात्मा ही विद्यमान रहता है किन्तु उसे सद्गुरु की कृपा द्वारा विचार करने से ही प्राप्त किया जा सकेगा ।

शिवमात्मनि पश्यन्ति प्रातिमासु नयोगिनः ।
अज्ञानां भावनार्थाय प्रतिमाः परिकल्पिता ।।५९ जा.द.उप.

कल्याण रूप परमेश्वर इस देह में ही नित्य विराजमान हैं । उसे यहाँ, अभी न खोजकर मूर्ख व्यक्ति बाहर, तीर्थ, मन्दिर, प्रतिमा, ध्यान में खोजता है । मूर्तियों की कल्पना तो अज्ञानियों में अपने से श्रेष्ठ परमात्मा के प्रति श्रद्धा जाग्रत करने हेतु कल्पित की गई है ।

मैं ही सर्वव्यापी होकर सब प्राणियों के अन्तःकरण में साक्षी रूप से स्थित हूँ। परन्तु हे मुनिश्वरों ! मुझे यह संसार वाले अज्ञानी मनुष्य सब लोकों की बुद्धि वृत्तियों का साक्षी नहीं जानते **'सर्वधी साक्षी भूतम्'** ।

नाहं प्रकाशः सर्वस्य योगमाया समावृतः
मूढोऽयं नाभि जानाति लोको मामजमव्ययम् ।। ७/२५ गीता

यह मूढ मनुष्य समुदाय मुझ अज और अविनाशी रूप को ठीक तरह से नहीं जानते हैं । मैं माया के पर्दे में छुपा होने से सबके सम्मुख प्रकट नहीं होता हूँ । मैं जब जब धार्मिक पुरुषों के उद्धार एवं धर्म स्थापना के लिये सबके सामने राम, कृष्ण, विष्णु, शिवादि रूप को धारण कर प्रकट होता हूँ, अवतरित होता हूँ, तब तब मूढ़ लोग मुझे जन्मने मरनेवाला मनुष्य रूप से ही जानते हैं । मनुष्य अपने भावों के अनुसार ही नाम, रूप योग माया से ढके हूए मेरे कल्पित रूप की ही उपासना करते रहते हैं ।

मुझको ब्रह्मा, इन्द्र, मनु मुनि और सब देवता तथा ख्याति प्राप्त पराक्रमी मेरे यथार्थ स्वरूप को जानने में समर्थ नहीं होते । मैं ही सबका शरीर रूप होकर सबका आत्मा हूँ और सब में मैं स्थित हूँ । मैं ही सबका आदि, मध्य तथा अन्त हूँ ।

जो मूर्ख मेरे भक्तों की निन्दा करते हैं, उसने साक्षात् मेरी ही निन्दा की है, ऐसा मैं मानता हूँ तथा जो श्रद्धा, प्रेम से उनका पूजन करता है, उसने मानो मेरा ही पूजन किया है, ऐसा मैं मानता हूँ ।

मैं ही सम्पूर्ण जगत् का उत्पत्ति कर्ता , पालन कर्ता तथा संहार कर्ता हूँ क्योंकि कारण में ही कार्य लय होता है । जैसे मकड़ी अपने में से जाला निकालकर पुनः अपने में ग्रहण कर लेती है, इसी प्रकार मैं जगत् उत्पन्न कर फिर अपने में लय कर लेता हूँ ।

वास्तव में तो 'मैं' सच्चिदानन्द ब्रह्म कुछ भी नहीं करता हूँ, क्योंकि मैं अचल, निष्क्रिय हूँ । किन्तु माया उपाधि से यह सृष्टि रचना, भक्तों को उनके कामनानुसार इष्ट फल तथा दुष्टों को दण्ड देने की क्रिया होती है । जिस प्रकार से मैं प्रेरक हूँ तथा जिस प्रकार से मैं प्रेरक नहीं हूँ इसको जो जानते हैं वह ज्ञानी मुक्त स्वरूप है । अतः तत्त्व विचार से जानना चाहिये कि वास्तव में ब्रह्म सब कुछ करते हुए भी कुछ नहीं करता है ।

अष्टदश अध्याय

श्रीरामचन्द्र ने ध्यान में भगवान शंकर का पुनः आवाहन किया तब शिवजी प्रकट होकर पूछने लगे हे राम ! अब तुम्हें किस समस्या का समाधान करने हेतु मेरी आवश्यकता हुई ।

श्रीरामचन्द्र ने कहा – हे भगवन ! कृपा करके मुक्ति प्राप्ति के साधन मुझे पुनः समझावे ।

शिवजी ने कहा – हे राम ! सावधान मन से सुनो । यह महान आनन्द दायक वार्ता मैं तुम्हारे प्रति पुनः वर्णन करता हूँ ।

यह अपना आत्मा ध्यान–ध्येय सम्पन्न नहीं है । उसका इड़ा, पिंगला, सुषुम्ना नाड़ी द्वारा आना जाना नहीं होता है । वह न अनाहत नाद में है, न कण्ठ में, न नाद में, न बिन्दु में, न हृदय में, न सहस्त्रार शिर में, न नेत्रों के बन्द करने में, न ललाट मध्य में, न नासाग्रभाग में, न प्राण में, न अपान में, न निरोध में, न मुद्रा में, न आसनों में, न रेचक, पूरक कुम्भक क्रिया में है । न जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और न तुरीय में, न वह सालोक्य, सामीप्य, न सायुज्य में, न ज्योति में, न ब्रह्मरन्ध्र में, न मूलाधारचक्र में, न सस्त्रारचक्र में उसे खोजो ।

हे राम ! ब्रह्म न दूर है, न पास है, न प्रत्यक्ष है, न परोक्ष है, न गोल है, न चतुष्कोण है, न त्रिकोण है, न र्हस्व है, न दीर्घ है, न ध्यान है, न शास्त्र है, न स्त्री है, न पुरुष है, न नपुंसक है, न उसके माता–पिता है, न भाई, न मामा, न पुत्र, न स्त्री, न पोता, न पुत्री है ।

उसके पाने के निमित्त न स्थान का बन्धन, न ग्राम का बन्धन, न घर का बन्धन है तथा न शरीर का बन्धन है । न पति बन्धन है, न पत्नी बन्धन है । न जाति बन्धन रूप है, न वर्ण बन्धन है, उसके प्राप्त करने में न व्रत, न तीर्थ, न उपासना, न क्रिया । किसी प्रकार की जरूरत नहीं है ।

न अनुमान करने की आवश्यकता है, न क्षेत्र बन्ध, न सेवा, न शीत, न उष्ण, न कुछ प्राण धारण की ।

वह परमात्मा जो अनेक पक्षों से रहित हेतु और दृष्टान्त से वर्जित बाह्य अन्तर एकाकार, परे से परे तथा उससे भी परे देव विश्व के आत्मा सदाशिव है । हे राम ! उसको ही तुम अपने आत्मा रूप से जानो । वह साधन साध्य अनित्य वस्तु नहीं है, अपितु स्वयं सिद्ध आत्मा ही है । इतना ही मुक्ति का अत्यन्त गुप्त उपदेश है । अतः सर्वदा यही निश्चय करो की मैं ही ब्रह्म हूँ ।

सिद्धि विघ्न रूप

एते विघ्ना महासिद्धेर्न रमते तेषु बुद्धिमान् ।
न दर्शयेत्स्व सामर्थ्य यस्य कस्यापि योगिराट् ।। ७६

यथा मूढोयथा मूर्खो यथा बधिर एववा ।
तथा वर्तेत लोकस्य स्वसामर्थ्य गुप्तये ।। ७७

हे राम ! हठ योग साधन से प्राप्त सिद्धि होने में विघ्न है, बुद्धिमान को उनसे बचना चाहिये । यदि सिद्धि अनायास आ जावे तो अपनी इस प्रकार की सामर्थ्य हो जाने पर भी कभी किसी को नहीं दिखाना चाहिये ।

इसलिए सर्व साधारण के सामने अपने को पागल, अन्ध, बहरे की तरह अनजान मूर्ख बनकर रहना चाहिये और उसे गुप्त ही रखना चाहिये तथा निरन्तर अद्वय आत्मचिन्तन में ही मन को लगाये रखना चाहिये ।

अष्टसिद्धि, पाताल तथा आकाश गमन सिद्धि, भूगर्भ सिद्धि, परकाया प्रवेश, दूसरे के मन की बात जानलेना । भविष्य घटना को वर्तमान में बतादेना । संकल्प सिद्धि, यह सब प्रकार की सिद्धियों को तृण के समान त्याग देना चाहिये ।

इन अणिमादिक और आठों महासिद्धि को त्याग ने वाला पुरुष मुक्त हो जाता है इसमें कोई सन्देह नहीं ।

न कुछ चिन्तन करें, न कल्पना करें, न मनन करे कारण कि वह मन के भी परे हैं । सम्पूर्ण चिन्ता को त्याग करके चित्त को अचिन्ता के आश्रय करे । हृदय में विचार प्रवेश करके और उसे अनवस्था कर अर्थात् लय करके फिर कुछ भी न विचारे ।

हे राम ! पत्थर, मिट्टी, काष्ठ, ताम्बा, पीतल, चांदी, स्वर्ण, स्फटिक मणि आदि द्वारा बनाई गई मूर्तियों का पूजा, मोक्ष की इच्छा करने वालों को कभी भी नहीं करना चाहिये । अन्यथा उनकी सगुण नाम, रूप में आसक्ति रह जाने के कारण उन्हें पुनः जन्म ग्रहण करना पड़ेगा । अतः फिर जन्म न लेना पड़े इस उद्देश्य से संन्यासी अर्थात् आत्मज्ञानी को मूर्खों की तरह बाहरी पूजा को नहीं करना चाहिये, बल्कि हृदय में ही आत्म ब्रह्म की 'मैं ब्रह्म हूँ' इस भाव द्वारा आत्मा की पूजा करना चाहिये । **२/२३ मैत्रेय उप.**

अनेकों जन्मों के दृढ़ संस्कारों से जिस प्रकार जीव को विपर्यय दृढ़ बुद्धि हो गई है कि मैं यह नाम जाति वाला देह हूँ । इसी तरह मैं द्रष्टा साक्षी आत्मा हूँ ऐसा दृढ़ ज्ञान जिस भाग्यशाली को हो जाता है, हे राम ! वह तो बिना इच्छा करते हुए भी मुक्त ही है । **२/१५ बराह. उप.**

इति श्रीपद्मपुराणे संक्षिप्त शिवगीता सार

सूपनिषत्सु ब्रह्मविद्यायां योगशास्त्रे शिव राघव संवादे
पण्डित ज्वाला प्रसाद मिश्र कृत भाषा टीकाया

माहात्म्य

जो इस शिव गीता आत्मशास्त्र को सद्गुरु के द्वारा श्रवण, मनन, निदिध्यासन करेगा एवं नित्य स्वाध्याय करेगा । वह नदी, अग्नि, पवन के समान पवित्र होता है । जैसे नदी के प्रवाह में, अग्नि की ज्वाला में, पवन के वेग में कोई मृत्यु को प्राप्त हो जावे तो भी इन जल, अग्नि एवं वायु को पाप स्पर्श नहीं करता है । इसी प्रकार इस आत्मनिष्ठ ज्ञानी पुरुष का जीवन कर्म करते हुए भी अकर्म ही बना रहता है । वह सब वेदों का ज्ञाता हो जाता है ।

उसे दस हजार प्रणव जप का, रुद्र के लाखों जपों का, समस्त व्रतों का, दान का फल प्राप्त हो जाता है । उसकी दस पिछली एवं आगामी दस पीढ़ी के लोग मानव जीवन पाने एवं ज्ञान के अधिकारी हो जाते हैं । उसके साथ बैठने वाला मित्र समाज एवं परिवार में रहने वाले सभी लोग पवित्र हो जाते हैं । वह महान होता है उसके साथ बड़े से बड़ा पापी भी पाप के समुद्र से पार हो जाते हैं ।

गोहत्या, भ्रुणहत्या, पशुबलि, स्वर्ण चोरी, पर स्त्री गमन, ब्रह्महत्या, आत्महत्या जैसे जघन्य पापी भी उसकी संगती से पाप मुक्त हो जाते है ।

तत् दर्शनेन सकलं जगत्पवित्रभवति, तत् सेवा परोऽज्ञोपि मुक्तो भवति तत्कुलम् एकोत्तरशात तारयति । तन्मातृपितृजायापत्यवर्ग चमुक्तं भवतोत्युपनिषत ।। –मण्डल ब्राह्मण उप. ५/१

जो इस आत्म निष्ठ ज्ञानी पुरुष की निन्दा करता है, बदनाम करता है, द्वेष तथा ईर्षा करता है, उस अधम पुरुष को ज्ञानी के त्याग किये हुए पापांश का भागी

बनना पड़ता है, तथा जो पुरुष ज्ञानी महापुरुष में श्रद्धा, विश्वास प्रेम करते है वे ज्ञानी द्वारा त्याग किये गये पुण्यांश के भागी होते हैं । ज्ञानी पुरुष की सेवा करने वाले अज्ञानी भी ज्ञान पाकर मुक्त हो जाते हैं और वह अपने १०१ पीढ़ियों को तार देने का भागी बनता है । उसके माता-पिता स्त्री भी ज्ञानाधिकारी बन संसार के जन्म-मृत्यु चक्र से मुक्त हो जाते हैं, ऐसा उपनिषद का वचन है ।

साधक को शास्त्र जाल में न पड़ कर जो अपना सत्य आत्मा है, उसकी ही उपासना सोऽहम् भाव द्वारा करना चाहिये । इस तरह के कर्म, जप, तप, यज्ञ, तीर्थ, यात्रादि अनित्य एवं सकाम कर्म की जीव को तभी तक साधना करना आवश्यक रहता है, जब तक कि उसे सद्गुरु द्वारा अखण्डानन्द स्वरूप आत्मा की अनुभूति नहीं होती है । जब 'मैं ब्रह्म हूँ' यह बोध जाग्रत हो जाता है, फिर उस तत्त्वनिष्ठ ज्ञानी पुरुष के लिये किसी प्रकार के साधन, ध्यान, भजन की कर्तव्यता नहीं रहती है । **पैङ्गल उप.**

जब किसी आत्मदर्शी सद्गुरु के उपदेश द्वारा अपने ब्रह्म स्वरूप का साक्षात् अपरोक्ष ज्ञान हो जाता है और बुद्धि अखण्ड ब्रह्माकार हो जाती है तब बुद्धिमान पुरुष ज्ञान रूपी अग्नि से समस्त अनादि संचित पुण्य-पाप कर्म राशि भस्म कर भव बन्धन से मुक्त हो जाता है ।

'ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्व पाशैः' । **पैङ्गल उप.**

'मंगलम् भवतु'

स्वामी निरंजनं रचित ग्रथावली

१. ज्ञानोदय
२. शान्तिपुष्प
३. भूली बिसरी स्मृति
४. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-१
५. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-२
६. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-३
७. सरल वेदान्त प्रश्नोत्तरी-४
८. मैं अमृत का सागर
९. मैं ब्रह्म हूँ
१०. प्राणायाम,मुद्रा, ध्यान एवं वेदान्त पारिभाषिक शब्दकोश
११. सीता गीता
१२. राम गीता
१३. गुरु गीता
१४. पंचदशी प्रश्नोत्तर दीपिका
१५. भागवत रहस्य
१६. आत्म साक्षात्कार
१७. मन की जाने राम
१८. योग वशिष्ठ सार
१९. निरंजन भजनामृत सरिता
२०. स्वरूप चिन्तन
२१. कर्म से मोक्ष नहीं
२२. श्रद्धा की प्रतिमा सद्गुरु
२३. अमृत बिन्दु
२४. उपनिषद् सिद्धान्त एवं वेदान्त रत्नावली
२५. सहज समाधि
२६. ज्ञान ज्योति
२७. कबीर साखी संकलन
२८. सहज ध्यान
२९. हे राम ! उठो जागो
३०. सद्गुरु कौन ?
३१. श्रीराम चिन्तन
३२. तत्त्वमसि
३३. साक्षी की खोज
३४. आत्मज्ञान के हीरे मोती
३५. अनमोल वचनामृत
३६. लाख रोगों की एक दवा
३७. हंस गीता
३८. आत्मज्ञान के लिये उपयोगी चित्रावली
३९. अष्टावक्र गीता सार
४०. अष्टाबक्र महागीता
४१. आत्म गीता (भगवद् गीता सार)
४२. शिव गिता

(उडिआ भाषा में) :

१. मुँ अमृतर सागर
२. मुँ ही ब्रह्म
३. मन कथा जाणे राम
४. सीता गीता
५. आत्म साक्षात्कार
६. वेदान्त शब्दकोष...
७. अमुल्य वचनामृत
८. सहज समाधी
९. सहज ध्यान
१०. हंस गीता
११. श्रीराम चिन्तन
१२. लक्षे रोगर गोटिए औषध
१३. निरंजन महाभागवत
१४. आत्म गीता (भगवद् गीता सार)

(मराठी भाषा में) :

१. होय ! मी ब्रह्म आहे

पूज्य स्वामीजी के अमृत प्रवचन तथा आत्मज्ञान पर आधारित भजन का कैसेट एवं सि.डि उपलब्ध है

Visit us at : www.niranjanmission.org

अधिक जानकारी तथा ग्रन्थ प्राप्ति के लिये सम्पर्क करें :
प्लट नं : **58/60**, दिव्य विहार, सामन्तरायपुर, भुवनेश्वर-2 (उड़िशा)